

समस्त अस्तित्व के मूलभूत तत्वा के समन्वय की खोज करते हैं। अपने श्रेष्ठतर दार्शनिक प्रतिपत्ति व कारण व अपने समन्वय का अधिष्ठान और संगति व साथ स्थापित कर पाते हैं। व न केवल प्रकृति और मानव जीवन में अभिव्यक्त अनन्तता और विविधता के समारोह, बल्कि तत्त्वमीमासाय अथवा पदार्थ मात्र को स्वीकार करते हैं। अरविन्द दानो अस्वीकृतियों की निन्दा करते हैं—भौतिकवादी की जा आत्मा को अस्वीकार करता है और अध्यात्मवादी की जो पदार्थ को अस्वीकार करता है। वास्तव में वे अध्यात्मवादी की अस्वीकृति को—जिस व 'समाप्ति की अस्वीकृति' कहते हैं—'अधिक सम्पूर्ण, अधिक अन्तिम और अधिक सव्यवस्थित' मानते हैं। व कहते हैं—'पृथ्वी पर दिव्य जीवन की स्वीकृति का सत्र तब बौद्ध आधार नहीं हो सकता जब तक हम न केवल यह मानें कि दिव्य आत्मा क्षीर प्रामाद की निवासी है। हम नागवान् वस्त्र को धारण करने वाली है, बल्कि पदार्थ को भी स्वीकार करें। जिम से वह उपयुक्त और भव्य वस्तु तैयार होती है जिससे वह निरन्तर अपने धर्म सुनता रहता है।' ¹⁶ बहुत एकसत्तावाद, चाहे भौतिकवादी हो चाहे आत्मावादी अरविन्द के दान के प्रतिकूल है। उनकी स्थिति को अलङ्घनशील कहा गया है। अतिभौतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी 'धरती का प्राणदायी रूप आवश्यक है। अतिभौतिक को वास्तव में सम्पूर्ण सत्ता में समाजा सत्ता है जब हम अपने पैर दुःखानुभव भौतिक पर रखते हैं।' ²

४

अब अरविन्द की दार्शनिक पद्धति पर और गूढ़ता से विचार करें। वे धर्म सत्ता को उभय सार रूप में पूर्ण इन्द्रियातीत मानते हैं। उसका ज्ञान नहीं है सत्ता। उभय सार में केवल यही कहा जा सकता है कि वह ज्ञान भी विचार और वागनामाय है उस सबके पर है। पर मानव चेतना के अन्वेषण में यह कहा जा सकता है कि सत्ता का त्रिगुणी स्वभाव है। न वह निराकार है न दिव्य है न बहुरूप है। वह त्रिगुणात्मक सत्त्व है—वह सत्त्व है सत्त्व है और ध्यान है। इन्द्रिय अरविन्द प्रायः परम सत्ता का गणितात्मक ज्ञान है। ¹

तो फिर भौतिक जगत् का क्या सत्य माना जा सकता है? जगत् की क्या आवश्यकता ही क्या है? यहाँ सृष्टि के उद्गम का अस्तित्व अन्तःसार माना जाता है। अरविन्द के लिए उभय सत्ता परम सत्ता व ध्यानदायी स्वभाव में है। यदि ईश्वर वस्तु ज्ञान माना जाता है तो वह सत्ता व विषय

तथा मन अथवा साधारण चेतन्य व बीच एक बड़ी आवश्यक है। इस बड़ी या बीच की सत्ता को अग्रविद अति मन कहते हैं। केवल अति मन के माध्यम से ही मैं ब्रह्मा तब कुछ सकता है और ब्रह्मा मन तब उत्तर करता है। अति मन "ब्रह्म व तीना पन्ना को विभाजित या पृथक् विय रिना ही विवक्षित करता है।" वह व्यापक और सृजनशील है। उस एव' का जान है पर वह एव' भीतर से निवृत्त मन के बाहर निकालने में समर्थ है वह मन के स्थापित करता है पर उनके विनाश में अपने आप को बिलीन नहीं हो जान देता। वह एव' के मन के विकीर्ण को धारण करता और स्थित रखता है और उसका वास्तविक विघटन में उचाता है।^५

अग्रविद अति मन की अवधारणा को बहुत महत्व देते हैं। वह उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं— वह चेतना गति का एक क्षमता है जो ईश्वर को अभिव्यक्त करती है और मन में गयी है और उसका स्वरूप के अंग प्राप्त करती है। न तो वह गति को उपज है न कण्ठाघात का रोगिता। वह चेतन मन्ता है जो अपना अंगि भागी और नित्य पदार्थ का अन्त्य स्थापन करती है।^६ वह मन की सतिद्धि है। वह मन को है जिसके लिए मन प्रयास करता है पर कभी प्राप्त नहीं कर पाता। मन पाते या मिताते नहीं है जता हम उग माना करते हैं। वह कवत पाते की गीत के लिए अग्रविद गीत के कुछ स्थापना में कुछ प्राप्त कर तक उसकी अभिव्यक्ति के लिए एक क्षमता^७ मान्य है। मन विवक्षता के साथ की गीत व्यावहारिक उपयोग के लिए व्यापक करता है। वह उग्र मन में पता का सूचक है और उसकी मुक्ति अपनी गीत अवस्था तक आगहन में गीतित है।

मन की अपूर्णताओं और टुटनेताओं का समझाने हुए अग्रविद कहते हैं— अपने स्वभाव में ही मन अनुपात के रूप को कायम उर उपायी अविभाज्य सम्पूर्णता में प्रयोग करता है। मन और अति मन के बीच गाम्भीर्य की है कि और भाग्य का की आवश्यकता है। अति मन के अवरोध पदों का उग्र मन होता है। मन अवस्था में अग्रविद का स्थापन के रूप में गीतित है। अति अति मन ही अमीम का व्यक्तित्व में प्रथम मणिधीकरण है कि भी कवत उग्रमन में ही अग्रविद के व्यक्तित्व का का व्यवस्थापन होता है। यह अवस्था का अति ही अग्रमन मन की ओर गयी है। मन का अग्रमन एक अति मान्य तथा विवक्षता में है। जहाँ अति मन की दृष्टि पड़ती है और उग्र मन की ओर गीतित तथा व सुधा के सम्पूर्ण ग्रह का प्रयोग करने का क्षमता होता है जहाँ मन करता अनुपात का दिमागित कर

य पुरुष का अवतार है। साधारणतः अवतार के विषय में हम अवतार को
 नित्य धार धामिन् आवश्यकताओं की दृष्टि से ही सोचते हैं। गीता के प्रसिद्ध
 श्लोक में कहा गया है कि ईश्वर धर्म की रक्षा के लिए ही मनुष्य रूप में अवतरित
 होता है। पर प्राचीन शास्त्रों में एक और भी इंगित है जिसको भरविन्द का
 कहना है अतः तब पदार्थ महत्त्व नहीं दिया गया है। यह अवधारणा है ईश्वर
 द्वारा मानव रूप ग्रहण करने से भिन्न मनुष्य द्वारा ईश्वरत्व का रूप ग्रहण
 करने की। केवल धर्म की सम्स्थापना के लिए अवतरण 'निरयव' 'यापार' मात्र
 होगा। केवल औचित्य अथवा 'याव' का संग्रहण तो ईश्वर की सन्निहित
 मानता महा साधारण उपायों द्वारा भी—उदाहरण के लिए महापुरुषों, एति
 हासिन् आ दातृणां और सत्ता के जीवन काय द्वारा भी—कर सकती है। अव
तार ता मानव प्रवृत्ति में निव्य प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति का रूप में होता है जिससे
मनुष्य अपने प्राणों पुनर्निमित्त और स्थापित कर सके। अतः इस विषय
 अवधारण का उद्देश्य यह है कि निम्न अपनी निहित सम्भावनाओं की सिद्ध
 करने में सहायक हो सके। इसीलिए ही शब्द 'अपन' और मानवता के बीच के
 परस्पर को फाटना है।

५

अपन विनाश की अन्तिम सीमा तब पहुँचने का बाद अतः मनुष्य पर य
 ही सीमाओं चढ़ने लगता है जिन पर हजार बड़े उतरा था और इस भीति हम
 विनाश प्रक्रिया पर पहुँचने हैं। यह बात याद रखना महत्वपूर्ण है कि भरविन्द
 का मानानुसार यदि हम विनाश के पहुँचने प्रयास करने का होना स्वीकार न करें
 तो विनाश निश्चय ही जाता है। उच्चतर रूप निम्नतर में से इसीलिए प्रकट
 हो जाता है क्योंकि यह निम्नतर में छिपा ही रहता है। पक्षों में से जीवन का
 अथवा जीव में से मृत्यु का विनिमित्त होने का कारण तब तब समझ में नहीं
 आता जब तक हम इस बात की समझाने की स्वीकार न करें कि पक्षों में
 जीव और जीव में मृत्यु का निहित है कि जीवन छिपी हुई चमत्कार का
 ही रूप है। और तब हम प्रेम में आने का चरण और अग्रे गति का निमित्त
 को स्थापित नहीं पाते कि मानवित्व के साथ ही सभी उच्चतर अवस्थाओं
 का एक साधारण और रूप मात्र ही जो मानव पर है। अतः कहा है कि
 अतः अति मन का निमित्त तभी दुर्भाग्यजन होता है जब विनाश का प्रयास
 करता है या मृत्यु को पानी प्रक्रिया माना जाय।

अतः अतः के भावधारकों का कहना है कि उनका उद्देश्य विनाश
 का अतः तब और जीव का निमित्त का ही माना है। यह कहा जाता है कि

निम्नारण या शरीरविन्द का अभिप्राय है विभेदीकरण, गणन, अभि-
व्यक्ति या विविधता अनुकूलता। जब शरीर संगठित, सूक्ष्म और जटिल हो
जाता है तो जीवन प्रकट होता है। इसी भाँति जब जीव शरीर अधिग्राधिक
जटिल हो जाता है तो मन प्रकट होता है। परन्तु साथ ही माय उर्ध्वाररण
भी चलता रहता है—स्वायत्त के स्तर में चेतना की शक्ति का अधिग्राधिक
उत्पन्न होने जाता है। इस प्रकार उर्ध्वाररण का अर्थ फलाय या विस्तार नहीं
बल्कि एक न दूसरे स्तर पर आराहण है। पर शरीरविन्द के लिए विकास की
सबसे महत्वपूर्ण बिन्दुयोजना है उनकी अलगपना। जब निम्न उठकर उच्च बनता
है तो इसमें उसका अस्तित्व नहीं मिट जाता। इसके विपरीत वह उच्चतर में
उठकर अनुप्राणित और सम्भारित होता है। जड़ पदार्थ में जीवन प्रकट होने
पर पदार्थ नष्ट नहीं हो जाता और न मन के प्रकट होने पर जीव ही नष्ट
होता है। शरीरविन्द का विश्वास है कि पश्चात्त्य विकास सिद्धांतों का एक
दायक प्रवर्तन है कि उनमें अनुसार उच्च निदानों के उदित होने पर
निम्नतर सिद्धांत का विनाश, अथवा सदा अपनी निम्नतर अवस्था में ही बना
रहना, अव्ययभावी है। अतः यहाँ श्री एमो ही मूल का बोध है क्योंकि
वह मानता है कि मनुष्य को उन्नतर आत्मा को शरीर और जीवन के निम्न
तर निदानों से अपने को पृथक् करना चाहिए। शरीरविन्द कहते हैं— शिष्य
अथवा आध्यात्मिक जीवों केवल मानसिक जीवन और शारीरिक जीवन का
अपने भीतर स्वात्तरित और आध्यात्मिकीकृत कर लगे बल्कि अपने धरातल पर
जीवन रहने में जितना मुक्त हो सके वहीं अधिक विस्तृत और सम्पूर्णतर
अवस्था प्राप्त हो। हमारे आत्म विस्तार में हमारे मानसिक शारीरिक और तबिक
अभिन्नता का नष्ट होना आवश्यक नहीं और न आध्यात्मिकीकरण में यह क्षीण या
दायक विचार होने हैं। वे अधिक समृद्ध अधिक सन्तान अधिक सम्पन्न और
अधिक सम्पूर्ण हो सके हैं और होनी भी हैं—अतः दिव्य परिवर्तन में वे सभी
सम्पन्नताओं में पहुँच जाते हैं जो उनकी अनाध्यात्मिकीकृत अवस्था में दायनसिक
अपने वे स्वात्मसम्पन्नता हो सके थे। ३३

इस हम आत्म शक्ति का आध्यात्मिक प्रवर्तन पर विचार करें। विनाश
वर्णन में मुक्त होता है क्योंकि वर्णन के शरीर में उत्पन्न के साथ ही वे सम्पूर्ण
बनता है कि आत्मिक अवस्था प्रवर्तित हो। शक्ति का प्रथम माता तब ही मुक्त
है। परन्तु तब ही जो दाय वर्णन का वर्णन बनता है वर्णन का दाय
मार्ग के लिए दाय बनता है। यह तब ही में एक प्रकार में वर्णन के दाय
में अति का वर्णन होता है वर्णन के मार्ग में प्रवर्तन और दाय को

भांति ही अनुभव करेगा। वह अपने यत्नितगत स्व के सम्पूर्ण सार्व के साथ, अपने यत्नितगत कम के सम्पूर्ण कम के साथ सामंजस्य और मकरापाक अभिप्राय में कार्य करेगा। पीछा और दुःख अब उभरा उस प्रभावित न कर सकेंगे जिन व गाधारण लागू को करते हैं। उस एक नई गति और समस्त मुख दुःख ही चरम अटस्थता से दस मकन की क्षमता प्राप्त हो जाएगी। वह अपने अन्तिम के भीति आधार का स्वरूप स्वीकार कर सकेगा क्योंकि तब वह उसका आध्यात्मिकता को आच्छादित न कर सकेगी। "वृत्त" नाम के प्रयोग में पदों को भी ब्रह्म ब्रह्म द्वारा प्रस्तुत आत्म ऊँचा माना जा सकेगा।" ४०

अपनी कुछ ज्ञान की वृत्तिभाषा में अरवि ने उस विराट विस्तार का विचार चित्र भीखा है जो मानसापरिष्कारतरण में, उस परिवर्तन से, आण्डा जिसमें प्रत्येक वस्तु मुरगित रहगी और प्रत्येक वस्तु का अतिक्रमण भी होगा।

"एक क्षणहीन सघनता शुद्ध और नगी,

मैं हर जगह एक सनातन तक फैलाता हूँ।" ४१

इस प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्य कह सकेगा—

मैं यह हो गया जो काल के पहले था,

एक गढ़ स्पष्ट न विचार और सचेतना को गालत कर दिया है।

मन द्वारा रची हुई सभी वस्तुएँ

एक क्षण और मूक ऐश्वर्य में सन्निहित हो गई हैं।" ४२

इसमें भी अधिक व्यञ्जनापूर्ण व पंक्तियाँ हैं जिनमें अरवि विश्वरत्नता का वर्णन कर रहे हैं जो मानसापरि परिवर्तन से प्रकट होगी—

मैं न विस्तृत सत्ता का अपने और भी विस्तृत स्व में सचेत लिया है,

और देन तथा वास है जिसे हमारी आत्मा देख रहा है।

मैं दोनों हूँ देवता और राक्षस, प्रेता और विनाश,

मैं पवन की गति और जलना सितारा दोनों हूँ।

समस्त प्रकृति मेरे पावन-वोषण में बड़ी हुई है

मैं उसका सघन हूँ और विशाल विश्राम भी,

मगर का हृदय मझे सम्पन्न करता है

मैं ज्ञान एकदो हृदय में कराता हूँ बुद्धि यत्न करता हूँ।

मैं सदास पविष्ट रचना प्राप्त कर लो हूँ

विराजो जो कुछ होता है उभरे यदा नहीं हूँ।

अपने ज्ञान विश्व का आह्वान मित्र हूँ

मैं अरुण अक्षिता गङ्गा को चला जाता हूँ।

अरविद

संगि होती है। हम सब दबाव ताप, सघटन और विस्फोट का अर्थ है जो कुछ अभ्य है उसको जम देन व निए प्रयत्न मपप। -४ और इस प्रकार जीवन का उदय होता है। जीवन जड़ पदार्थ में चेतन के प्रथम अंकुर का सूचक है। वनस्पति-जगत् में उसकी अभिव्यक्ति प्रारम्भिक है। चेतन अपना अभिव्यक्ति से स्वयं ही अमृतुष्ट होकर पशु घरातल पर उठता है जहाँ वह अधिन स्वतन्त्र और मुक्त हो जाता है। अब वह ऐसे प्राणी में अगिन्त है जो सवा और सवेदना में युक्त है। इस अवस्था में प्राणवान पदार्थ में मान मित्रता की नीला दिताद पड़न लगता है। पर चेतन अब भी अमृतुष्ट है। वह और भी ऊपर आरोहण करता है और ऐसे मन अथवा बुद्धि के रूप में और भी अधिक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त करता है जिसमें स्ववेदना, भेदाभेद तथा विवेचन की क्षमता मौजूद है। अभी तक विकास केवल इसी अवस्था में पहुँच पाया है। पर यह मानने का कोई कारण नहीं कि वह यही रक जाएगा। अरविद का विश्वास है कि विकास का अगला चरण अनिवाय रूप से अति मन के अरातन पर आरोहण का ही होगा।

६

यह अगला चरण रूपांतरण की विविध प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होगा। रूपांतरण के इन तीन पन्ना को अरविद आत्मिक परिवर्तन, आध्यात्मिक प्रसिक्कन और मानसोपरि परिवर्तन कहते हैं।

आत्मिक परिवर्तन हमारे मानस या आत्मा का छिपाए रखन वाले परदे के हटने को कहते हैं। अरविद आत्मा का 'वस्तु' में दिव्यत्व की नित्य गूढ़ प्रकाश कहते हैं। यह दिव्यत्व हमारे जीवन के समस्त अनुभवों के गूढ़ भा अद्वितीय और अमोघ रहता है। पर आंतरिक चेतना का ज्वलन और शुद्ध रहना ही पर्याप्त नहीं, यह भी आवश्यक है कि आत्मा का प्रकाश हमारे समस्त अस्तित्व में प्रवाहित हो और हमारे भीतर के जावन मन और पदार्थ में परिष्कार हो जाए। आत्मिक परिवर्तन द्वारा यही कार्य पूरा होता है। इस मदभ में अरविद आत्मा के निष्पन्न का बड़ा महत्व देते हैं, क्योंकि ऐसी गिता के द्वारा ही हम आत्मिक रूपांतरण की तीव्र आवश्यकता का अनुभव कर सकें हैं। एक अर्थ में योग ऐसी ही शिखा है जो हमारे भीतर स्थित आत्मा को जाग्रत करती है।

पर आत्मिक परिवर्तन भी पर्याप्त नहीं है। उसका आध्यात्मिक परिवर्तन द्वारा, हमारे भीतर एक उच्चतर प्रकाश के अवरोहण द्वारा सम्पूर्ण आनन्द है। ऊपर से आत्मा परिव्याप्ति नहीं होगा ता हमारे आत्मिक

इस आधुनिक वैज्ञानिक समाज का अविनाश विरोधाभास मानते हैं। एक ओर वह प्राणवादी अहंवादिता के सभी अतिरिक्तों से जुड़ा है और दूसरी ओर वह सामूहिकता के विपरीत आदर्श की ओर भी इंगित करता है। विज्ञान की प्रकृति में आक्रमण और आ मारोपण के प्रमाण मिलते हैं—ऐसा जीवन-मध्यम मिलता है जो अविनाश और सर्व-वापी का पडता है। पर उस यह भी पता चलता है कि प्रकृति प्रत्यक्ष को सुरक्षित रखती है, व्यक्ति को नहीं कि ईसाई के ऊपर समूह की प्राथमिकता है।

अरविन्द आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोणों की एक साथ सन्तुष्टता की तथा मानव सृष्टि के लिए उनके आत प्रतियोगिता की सम्भावनाओं की विस्तार से जांच करते हैं। वे इन दोनों दृष्टिकोणों के उपयोग द्वारा प्राप्त पादचार्य समाज की प्रगति को स्वीकार करते हैं। किंतु इस सफल उपयोग के बावजूद यदि आज जीवन में गड़बड़ है तो उसका कारण लोहुरा है। पर तो वैज्ञानिक और समाजशास्त्री दोनों ही यह भ्रम गए जा पड़ते हैं कि विज्ञान के मन्त्रों के समझने के लिए न बसत मनुष्य का अनादित बलि उगका अविष्य भा—उसकी मानसिक और आध्यात्मिक नियति भी—जानना आवश्यक है।^{११} हमारे मानव विज्ञान के माध्यम के रूप में तत्पक्ष पर अत्यधिक भरोसा दिया जाता है। दूसरी कठिनाई वास्तव में पहली में अलग नहीं पा जा सकती। धूम्र इस ओर कुछ हमें नीचे या तरफाल हमारे सामने है उस दंगर है सन्तुष्ट है जान ^{१२} दीन समाहित जा क्षेत्र हमसे ऊपर है उह जान की पड़िया का पड़ाने में हम अग्रगण्य रहते हैं।

बहुमन साइकिज्म के बन्त में आयाया ॥ अरविन्द इन बातों का विचार करते हैं और एक विस्तार से और यह भी लिखते हैं कि विज्ञान द्वारा उनका सामान्य ज्ञानिक दृष्टिकोण को सृष्टि और सामान्य ज्ञान की विधि समझाया पर लागू किया जा सकता है। वे मानव विज्ञान में तकनीक के निर्माण के रूपों को पूरा मानता है।^{१३} तबता के द्वारा है मनु में न अपने आ त रिक तथा बाह्य जीवन में व्यवस्था लाना अपने परिवर्तन पर लागू करना और एक प्रगतिशील भविष्य की कल्पना करना सीखा है। जीवन के अन्तिम में विरहित मार्ग समझाया में बचन लगता ही सीमा है विज्ञान अपने आपका नाम में विनम्र करने का पीछे हटकर गड़ रहने की, अध्ययन और विचारण करने की सामर्थ्य है।^{१४} यह विज्ञान ज्ञान के ही विज्ञान मौजूद रह सकती है पर धर्म के साथ और भावात्म की बाइ में अपने आपका बसा सकती है। फिर भी सामा तबता अपने खुद में अतिरिक्त मनु और अधिन गता है।

में समाप्त पक्षों पर काल और जीवन के परे मरुमण करता हूँ,
फिर भी ज मो और अज मो वस्तुओं से एकाकार हूँ ।' २३

किन्तु अरविन्द मानसोपरि स्फातगण के बाद सदाता की स्थिति की कल्पना नहीं करता । यद्यपि ममस्त आध्यात्मिक ज्ञान-सम्पन्न प्राणिमा के जीवन की सामान्य रूपरेखा अत्यंत मिलती जुलती होगी फिर भी विविधता का अन्त नहीं हो जाएगा । "मानसोपरि अथवा आध्यात्मिक ज्ञान सम्पन्न प्राणिमा की जाति एक ही प्रकार से बनी हुई एकमात्र स्थायी रूप में बनी हुई जाति नहीं होगी क्योंकि अति-मन का नियम है अनेकता में परिपूर्ण एकता, और इसलिए विविधता की अनिवार्य प्रतिफल विविधता में होगी, यद्यपि अपने आधार में, अपने विधान में, अपने सब उदघाटक और सब संयोजक क्रम में, चेतना एक ही होगी ।" हमारे विकास की वर्तमान अवस्था में अभी तक विविधता और विग्रह का चोली दामन का साथ है । शारीरिक जैविक तथा मानसिक घरातला पर हमारे उद्देश्यों की अस्पष्टता और ग्रह की दासता के कारण विभिन्न हिता में बलह पैदा हो जाती है । हम धँसे में टटोलते रहते हैं क्योंकि हमारा ज्ञान, विज्ञान और सामाजिक संगठन में प्राप्त सफलता के बावजूद, अभी तक खण्डमूलक और अपूर्ण है । मानसोपरि परिवर्तन होने पर विविधता प्रतिद्वंद्विता अथवा संघर्ष की प्रस्तावना न बनेगी, बल्कि वह सामंजस्य के एक प्रमुख नियम का काय-लेत्र होगी ।

वैसा हीन पर उजेल और अंधेरे के बीच संघर्ष का स्थान प्रकाश से अधिकतर प्रकाश की ओर प्रगति न लेगी । विग्रह अर्थात् संघर्ष की टकराहट, स्फीति तथा विस्फीति के अन्तर्गत विषय और अपने मिश्रण तथा संघर्ष में मजबूत दृष्टिहीन शक्तियाँ का अस्थिर सन्तुलन—सब उस प्रभाव को अनुभव करेंगे और उनकी जगह प्रगति करने हुए जीवन और चेतना की अधिक उदघाटनकारी व्यवस्था एक श्रेष्ठतर जीवन व्यवस्था स्थापित होगी । वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञानसम्पन्न प्राणिमा के घरातल पर आरोहण मनुष्य के लिए पृथ्वी पर दिव्य जावन की स्थापना से किसी प्रकार कम न होगा ।

७

अभी तक दार्शनिक के रूप में अरविन्द की व्याप्ति उनके ग्रन्थ द लाइफ डिवाइन पर ही आधारित है । पर यदि भविष्यवाणी का माहस किया जाए तो कहा जा सकता है कि भविष्य में भारतीय चिन्तन का इतिहासकार अरविन्द दार्शनिक के स्थायी और सुस्पष्ट तत्त्वा के लिए मग्नवत इनकी अधिक सतिष्ठा

एक नये आध्यात्मिक युग के द्वार पर है जो ऐसे रूपांतरण में प्रारम्भ होगा। अवश्य ही उसका प्रतिरोध भी होगा, जिसी जाल्य गति द्वारा प्रतिरोध नहीं कर सकता स्वयं मनुष्य द्वारा। हमारा यही स्वभाव है कि अपने आप द्वारा भी आगे बढ़ जाना, पीछे छोड़ दिया जाना हम पसन्द नहीं करते। पर जब मनुष्य यह समझ लेगा कि आध्यात्मिक युग उसकी सामान्य मानवता को नकारने की माँग नहीं करेगा तो यह प्रतिरोध दूर हो जाएगा।^{५१}

वास्तव में जिस हम 'सामान्य मानवता' मानते हैं वह स्वयं प्रकृति में बहुत असामान्य है एक आश्चर्यजनक घटना एक चमत्कार है। मनुष्य एक अद्वयता है जो अपने पशु स्वभाव से उठकर हाथ बाहर निकलता है, उसमें गौरव पूर्ण असामान्य है। पर वह सम्पूर्ण देवता बनने के पथ पर है और यह स्थिति उस अपनी तुलना में अपनी ही असामान्य समझती है जितना वह स्वयं पशु की तुलना में है।^{५२} और फिर भी यह चरण रखा तो जाना ही है, क्योंकि जब इसी प्रकार वह अपने मांसको परिपूर्ण कर सकेगा। सम्भ्रान्त का गति अथ तब तब पूरा न होगा जब तक यह परिवर्तन न हो जाए। पिछले युगों में मानव विकास की धारा पर दृष्टिपात मात्र हम इसका विवेकान दिखाने के लिए पर्याप्त है।

सम्भ्रान्त के पहले चरण में मानव चेतना कुछ पदार्थ की सम्भावनाओं का समाप्त करती है। वह जीवन और अमृत कुछ पदार्थ के आधार पर काम नहीं ले। वह कहती है—'अनमो ब्रह्मा। दूसरे चरण में मनुष्य अस्तित्व का विश्वसनीय जीवन का स्पर्शन मानता है। विरतन पदार्थ की धारण यह विरतन जीवन की भाव करता है। वह कहता है—'प्राण ब्रह्मा। और भी ऊपर उठकर वह महान् आभासिकताओं और आत्मा वेदनाकारी भाव का साक्षात्कार करता है। वह कहता है—'मनोमय ब्रह्मा। अब यह मनमय आत्मा है जब हम विरतन मन में विरतता आत्मा की ओर बढ़ें और कहें—'सर्वगत ब्रह्मा। जब इस प्रकार ही समाज का आध्यात्मिकरण हो सकता है। और जब वह होगा तब पूरा मानव जति अपने आध्यात्मिक स्वरूप की भाँति जागृत होगी—माधुर्य और अद्वयता में गति करेगा माधुर्य आत्मा में।^{५३}

आध्यात्मिक प्रकाश के धर्मविरुद्ध मनुष्य के अज्ञान के पुनर्गन्तव्य बहुत प्राचीन काल में। आधुनिक स्थिति का सर्वोच्च स्तर है। किन्तु अभी तक यह आध्यात्मिक प्रकाश नहीं देखा गया है। जैन जीवन का स्तर तो है पर स्तर नहीं है।^{५४} ११ मार्ग में युग की पाठ्यता चेतना में माधुर्य

बुद्धि हमारे जीवन के नियम निर्धारित करने के लिए अधोमुख अथवा अधोमुख मचरण करती है। पर एक और क्षमता है जो अधिक् आलोचकपूर्वक कार्य करती है—एसी आत्मा है जो उच्चमुख और अतमुख है।^{१३} हम इतिहास के ऐसे नाजूक मगम पर आ पहुँच हैं जहाँ हम इस उच्चतर क्षमता की आर उमुख होकर विकास का नया पथ निर्मित करना है।

वास्तव में तकना के दो कार्य हैं। अपने एक पक्ष में वह सत्य के निर-पक्ष अवयव की सूचक है। पर उसमें आवहारीकता का भी भारी मोह हाता है। वगसाँ की भाँति अरविन्द भी कहते हैं कि तकना का व्यावहारिक उपयोगिता के साधन का काम उसके पास के साधन के कार्य का दवा देता है। यह नहीं कि पन्ना काम अनुचित है बल्कि वह तो तकना को मनुष्य का बन्दी रखने वाली अधी शक्तियों को बंधन के लिए प्रेरित करता है। पर अपना कार्य पूरा करने के बाद तकना के ऊपर उठने की शक्ति रखता है। मानव जीवन की मूल शक्तियाँ जितनी उसका नीचे हैं उतनी ही उसका ऊपर भी हैं।^{१४} नाचवाली शक्तियों के गुड़ और परिष्कृत हान के बाद स्वयं तकना का उन शक्तियों का भाग हान लगता है जो ऊपर है। वह अपने आप प्रतिनिधित्व करने वाले प्रकाश को, निष्क्रिय ढंग से किंतु महानुभूतिपूर्वक, प्रतिबिम्बित करने में समर्थ है। उसकी सीमा आ जाग पर वह तर्जोपरि की आर इगित करने का अपना अतिम—और गायद सबसे गौरवपूर्ण—कृत्य पूरा करती है। वह मनुष्य में कहती है— जगत और मनुष्य में एक स्व एक आत्मा एक ईश्वर है और सब कुछ उसी का आत्म मगोपन और आत्मोन्मादन ही है। मैं उसकी सेविका इसीलिए बनी हूँ कि पार धीरे तुम्हारी आत्मा की पट्टी खोलकर तुम्हारी शक्ति के मात आच्छादन दूर कर दूँ यहाँ तक कि तुम्हारे और उसके बीच केवल मरा अपना प्रकाशित आवरण ही नैप रह जाए। उस भी हटाने अपनी आत्मा का नियम का माय एकाकार कर दो। तब तुम अपने आपका जानोगे, अपने अस्तित्व का सर्वोच्च और सबव्यापक नियम पा मनाग मुझसे उच्चतर इच्छा और ज्ञान के स्वामी नहीं तो कम से कम साधन अवश्य बन सकाग और एक मानव तपावि दिय जीवन के सच्चे रहस्य और सम्पूर्ण अर्थ का समझ मगोप।^{१५}

५

तो फिर आवश्यकता मानव जीवन के मूलमूल स्थापन करने की है। एना स्थानान्तरण जो बुद्धि का पीछे छाड़ दे यद्यपि स्वयं बुद्धि ही उसकी अनिवार्यता की बात अपने-मे कान में कहती है। अरविन्द का विश्वास है कि मनुष्य अत्र

संदर्भ

१ अरविन्द न बुद्ध का उल्लेख यही भक्ति से किया है पर उनकी विभिन्न दृष्टि की रचना में बौद्ध धर्म का योग नगण्य है।

२ प्राधुनिक भारत में अरविन्द ही एकमात्र महत्वपूर्ण चिंतन हैं जो इस्लाम का प्रभाव से सम्पूर्णतः मुक्त रह हैं। भारतीय संस्कृति के विषय में उनका प्रचुर लेखन में यह सगना है जैसे भारत में इस्लाम के एक हजार वर्ष से कोई अंतर ही नहीं पड़ा।

३ इसका यह अर्थ नहीं कि प्राधुनिक भारत पर अरविन्द ने ईश्वर याही दृष्टिकोण की उन्नति की है।

४ जसा हम जानें म दल्लेगे जसा सो वाता में अरविन्द का विचारों में गांधी का विचारों का साथ घनिष्ठ साम्य है। पर गांधी का आचरण की सब व्याख्या को वे स्वीकार करने नहीं जान पड़ा।

५ सुन्नीय दमनद, अहिंस और तिरस् पर अरविन्द का निबन्ध।

६ उनका यह ऐतिहासिक आन मोता का स्थान विगुड राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी ऊँचा है।

७ विश्वभारती क्वाटरली (सं० ६, पृ० ३३६) में प्रकाशित एक चिन्ता में।

८ श्री अरविन्द में सगन द्वारा उद्धृत पृ० १८।

९ उपराज गुरुतव की भूमिका में जेटनद द्वारा उद्धृत।

१० ये धार्मिक साहित्य और हर प्रकार के धार्मिक कार्य के विरोधी भी थे।

११ कमयोगिन में निबन्ध १९०६।

१२ सगन द्वारा श्री अरविन्द में उद्धृत पृ० १६।

१३ उन्हें अपनी भाषा के बाह्य ज्ञान वाली राजनीतिक घटनाओं का पूरा ज्ञान का भाव था दिया जाता है।

१४ अरविन्द का कार्य का विषय में प्रकाशित विचार सामग्री में किसी भी तरह की त्रुटि भी भी धनदत्त की अभिव्यक्ति मिलता है।

रूपांतरण की लालसा के अधिकाधिक परिचाप्य होने से होगी। मानव जीवन अपनी वर्तमान सीमाओं से बृहत्तर और गुह्यतर श्रित्तिजा में सम्ममण का साक्षी होगा। “पार्थिव विकास अपनी महान् ऊर्ध्वमुखी गति प्राप्त कर लेगा और उस दिव्य प्रगति के पथ पर एक उदघाटनकारी चरण रखेगा जिस पर पशु-स्वभाव से विचारणीय और आकाशावान् मनुष्य का उदय केवल एक अस्पष्ट तैयारी और सुहृद् आश्वासन मात्र था।’

२७ वही पृ० १६२ ।

२८ एस० के० मत्र द्वारा इटोडकान दृढ़ फिलॉसफी आफ थी
अरविन्द म उदघट, पृ० ८६ ।

२९ उसी पुस्तक में उदघट पृ० ८६ ।

४ अरविन्द यह भी कहते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञानसम्पन्न प्राणी ऊँच
पदार्थ का स्वीकार कर सकता है क्योंकि 'उसके लिए' पदार्थ के साथ आत्मा
का सम्पर्क बरत चुका है । उन धर्मोपेक्षित क्रिया का वर्तमान सन्तुलन पलट चुका
है जो आत्मा के ऊपर भौतिक प्रकृति के आवरण और प्रभुत्व को चलने देती है ।'

४१ थी अरविन्द सास्ट पोस्ट, पृ० २० ।

४२ वही ।

४३ वही पृ० ८ ।

४४ द लाइफ डिवाइन पृ० १०३४ ।

४५ वही पृ० १ २१ ।

४६ आत्म १८९६ से १९०६ तक द आय मे नमरा प्रकाशित ।
पुस्तक रूप में १९४८ में प्रकाशित ।

४७ द ह्यूमन साइकिल पृ० ६ ।

४८ वही पृ० ८ ।

४९ वही पृ० १४ ।

५० सच्ची धीर झूठा आत्मनिष्ठता का अंतर द ह्यूमन साइकिल
के पाँचवें अध्याय में समझाया गया है ।

५१ द ह्यूमन साइकिल पृ० ८८ ।

५२ वही पृ० १ ५ ।

५३ तुलसीदास आध्याय १० द आर्जिस एण्ड लिमिटेड्स आफ रीजन ।

५४ द ह्यूमन साइकिल पृ० १४६ ।

५५ वही पृ० १५ ।

५६ वही पृ० १६० ।

५७ वही पृ० ८१ ।

५८ वही पृ० १६ ।

५९ वही पृ० ५ ।

६० वही पृ० ३४ ।

१५ तुलनीय, एस० के० मत्र इंट्रोडक्शन द द फिलासफी आफ् श्री अरविन्द ।

१६ भारतीय चिन्तन की विभिन्न धारायाँ के समस्त दोषों का निराकरण भी ।

१७ तुलनीय, चौधरी और स्पीगलबग द्वारा सम्पादित परिसवाद, 'द इंटिग्रल फिलासफी आफ् श्री अरविन्द' (१९५८) ।

१८ वे 'महान् अम्बीकृति' कहकर हम बात पर बल देते हैं ।

१९ द साइफ डिवाइन पृ० ८ ।

२० तुलनीय दोहों श्री अरविन्दस सिनथेसिस ऑफ् थायडियलिज्म एण्ड मेटिरियलिज्म ।

२१ अरविन्द कहते हैं कि इन तीनों में से कोई एक भी, आनन्द भी, दूसरा से 'अधिक सत्य' नहीं है ।

२२ द साइफ डिवाइन, पृ० ११६ ।

२३ तुलनीय, नलिनीकांत गुप्त द साइंस आफ् डिसेंट आफ् कागसनेस ।

२४ एस० सी० चटर्जी 'माइंड एण्ड सुपरमाइंड इन श्री अरविन्दस इंटिग्रलिज्म' ।

२५ वही ।

२६ द साइफ डिवाइन पृ० १७७ ।

२७ वही, पृ० १७८ ।

२८ नलिनीकांत गुप्त साइंस ऑफ् डिसेंट आफ् कागसनेस ।

२९ द साइफ डिवाइन, पृ० ५ ।

३० आर० एस० श्रीवास्तव द इंटिग्रल थ्योरी आफ् इषात्पूगन (द इंटिग्रल फिलासफी आफ् श्री अरविन्द, ए सिम्पोजियम से, पृ० १३३) ।

३१ द साइफ डिवाइन, पृ० ७३४ ।

३२ हरिदास चौधरी द इंटिग्रल फिलासफी आफ् श्री अरविन्द (इमी शीपक के एक परिसवाद से, पृ० ३१) ।

३३ द साइफ डिवाइन पृ० ६४८ ।

३४ नलिनीकांत गुप्त साइंस आफ् डिसेंट आफ् कागसनेस (अरविन्द मन्दिर, द्वितीय वापिकी, १९४३) ।

३५ द साइफ डिवाइन पृ० ६४६ ।

३६ वही, पृ० ६४६ ।

इतिहास में महानतम शक्तीकारा में होगी और उह शक्ति, शायनहावर और बगसा के साथ उन लोगों की काटि में रखा जा सकता है जिन्होंने दाशनिक गद्य को सजनात्मक साहित्य के स्तर तक उठा दिया है। उनकी उपमाएँ जितनी चमत्कारपूर्ण हैं उतनी ही स्पष्ट भी, उनके शब्दचित्र जितने रंगीन हैं उतने ही विशद भी। वे अपने वाक्या में ऐसी प्राणवत्ता भर देते हैं कि दीर्घ विस्मृत विचारों के जमे हुए शिलाखंडों में नया जीवन फूट पड़ता है।

स्मरणीय वाक्यांश राधाकृष्णन की जेबनी से अप्रुव सहजता से निकलने चल आते हैं। उनकी पम्तका के पष्ठ ऐसे वाक्या से भरे पड़े हैं— 'आध्यात्मिक होना इतनी तीव्रता से सोचना है कि चिंतन दशन बन जाए', 'मुक्ति में मनुष्य स्वयं अपनी महान कृति बन जाता है', 'सुंदर फूल उन कीचड़ भरी जगहों का औचित्य सिद्ध करते हैं जिनसे वे निकल है जीवन पथ का अंतिम अंश अनेकों ही पूरा करना पड़ता है', 'वक्ता का सिरा जसा खगोलों के सारे दीपकों का जलता हुआ कहा जाता है हम अपनी आत्माओं का वर्दी नहीं पहना सकते सम्पूर्णता का पथ सीढ़ी नहीं एक चढ़ाई है' 'स्वर्णयुग वह समय है जब सत्र सिर कठोर हाथों और सब तबिये नरम', 'सत्य के गह में कोई अनिश्चय सैनिक भर्ती नहीं हो सकती', 'शान्तिदया के जीवन में तनिक सा इतिहास बनता है, और शान्तिदया के इतिहास से थोड़ी सी परम्परा।

यह अभिव्यक्ति की क्षमता उनके लेखन तरु ही साक्षित नहीं है। यह उनके वातालाप और भाषणा में भी उतनी ही प्रकट है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक दार्शनिक क्षमता में राधाकृष्णन के व्यापक प्रभाव का कारण अतः उनकी वाग्मिता है। फिर भी इससे अधिक आमक कोई बात नहीं हो सकती कि उह बसल ऐसा प्रवाहशील बक्ता या शब्द गिल्पी मात्र मान लिया जाए जिसे परिश्रमपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती। सूक्तियाँ युक्तियाँ का ध्यान नहीं ले सकती—कम से कम दर तक नहीं ही दिख सकती। राधा कृष्णन की स्थापनाएँ और समीक्षात्मक निष्कर्ष ठोस तर्कसंगति पर आधारित हैं। उनके लेखन में सहज लगन वाले विवरणों के पीछे बर्षों का कठोर परिश्रम है।

२

उनकी जितनी प्रसिद्धा और विख्यापी रयानि को देखने हुए उनके पाठक उनके व्यक्तिगत अथवा प्रारम्भिक जीवन के बारे में इतना कम जानते हैं कि आश्चर्य होता है। यह अधिकतर अपनी कठिनाइयाँ सघर्षों रचियाँ, आशाया और आनवाया के विषय में उनकी ही चुप्पी का परिणाम है। एक

आठवा अध्याय

राधाकृष्णन

१

ज्ञान के विषय में दो धारणाएँ ऐसी हैं जो किसी तरह नहीं मिटतीं । एक तो यह कि ज्ञानिन् व्यावहारिक कार्यों से अभ्युक्त होता है और दूसरा यह कि ज्ञान गहरा तभी हो सकता है जब वह नीरस भी हो । राधाकृष्णन का जीवन इन दोनों आत्त धारणाओं का जीता जागता सङ्ग है ।

यह एक ऐसे गान्धीय दानिक का प्रेरणादायक उदाहरण है जो न केवल राज्य के सर्वोच्च पद पर आसीन है बल्कि जिसकी छाप देश के सामाजिक, गानिक और सांस्कृतिक विकास पर पड़ी है । दुनिया राधाकृष्णन का एक ऐसा दानिक राजममन के रूप में, राजनयिक और राजनीति के रूप में ही जानता है जो निरंतर उन सर्वोच्च मूल्यों से संचालित होता रहा है जो मानव जाति ने अपने सम्बन्ध और उत्थान-पतन में इतिहास में बिखेरित किये हैं । पर बहुत कम लोग का कहें विश्वविद्यालयों के उप कुलपति तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के रूप में उनके कार्य की याद है । उनकी साहित्यिक रचना से तो और भी कम लोग परिचित हैं यद्यपि वे भारतीय पी० ई० एन० के अध्यक्ष तथा साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष हैं ।^१

यह तथ्य अविश्वसनीय लगता है कि उन्होंने ये सब जिम्मेदारियाँ सम्हालने के साथ साथ इतना भवकाँ और गहन सेवा पाई कि ज्ञान की गहनतम समस्याओं पर पुष्पक लिखें हिंदू और बौद्ध धर्म के कालजयी ग्रन्थों का सम्पादन और सुंदर अंग्रेजी में अनुवाद करें मसाले में की विद्वत्मंडली के समान भाषण दें और बहुमूल्य शोधकर्ताओं का मार्गदर्शन करें । यह आश्चर्य और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि उनके समस्त जीवन में विषयवस्तु की महत्ता में साहित्यिक रूप की उत्कृष्टता किसी प्रकार कम नहीं है । उनकी अभिव्यक्ति की सद्गता विस्मयकारी है । उनकी गणना गान के

आलोचनात्मक अध्ययन के लिए मैं बाय हुआ परम्परा में आस्था डगमगाने पर ही दान की आवश्यकता पदा होती है । ८

राधाकृष्णन को दशन की ओर प्रेरित करने में भयोग का भी हाथ रहा है । सत्रह वर्ष की आयु में जब वे इतिहास, दशन और गणित के बीच असमजस में पड़े थे उनका रिश्ता के एक बड़े भाई ने अपनी कुछ पुरानी पुस्तकें उन्हें उपहार स्वरूप दी—वैस्टन की सांख्यिक, स्टार्ट की सांख्यिकी और मक्जो की एथिक्स । राधाकृष्णन ने ये पुस्तकें बड़े चाव से पढ़ीं और दशन शास्त्र में आजीवन उपासक बन गए । इस घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने दिसले के इन शब्दों को उद्धृत किया है—'जीवन सयाग भाग्य और चरित्र के ताने बाने से युना रहस्यमय कपड़ा है ।' ९

राधाकृष्णन ने अपना कम जीवन प्रेसिडेंसी कालेज, मद्रास में दशा के शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया और भारतीय चिन्तन के कालजयी ग्रन्थों के गहन अध्ययन में लग गए । सस्कृतियों की सहायता से उन्होंने प्राचीनपथों सम्प्रदायों के आधारभूत ग्रन्थ उपनिषदों और भगवद्गीता पर और ब्रह्मसूत्र पर, गङ्गा रामानुज माधव और निम्बाव के भाष्यों पर अधिकार प्राप्त कर लिया । उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म के भी आधारभूत ग्रन्थों से परिचय प्राप्त किया । यूरोपीय चिन्तन का उनका अध्ययन भी इतना ही व्यापक था । उन्होंने कहा है कि दार्शनिक के रूप में अफलातून प्लाटिनस काट, बटले और बगसाँ ने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित किया । पर ह्यूड्डेड, अरेक्जेंडर काचे और रसल जैसे आधुनिक दार्शनिक भी उनके उतने ही परिचित हैं । यूरोपीय साहित्य भी सदा उन्हें आकर्षित करता रहा है । उनकी रचनाओं में गैक्सपियर, गेट्ता, गान्धे, हिटलर, वाइनिंग शली और वायरन के अनेक उद्धरण बिखरे पड़े हैं ।

राधाकृष्णन सदा ही अध्ययन में रहे हैं । पिछले दिना उन्होंने माक्सवाद और अस्तित्ववाद का अध्ययन भी उसी सम्पूणता और उन्मुख मन में प्रारम्भ किया जो कई दशकों में पहले दान ने अध्ययक के रूप में उनके अध्ययन की विशेषता थी । विश्वव्यापी यात्राओं तथा प्रत्यक्ष विचारधारा के विचारों प्रतिनिधियों में व्यक्तिगत सम्पर्कों की भी उनकी प्रौढ़ रचनाओं पर बड़ी गूँथ छापी है । और यद्यपि इन सबमें—प्राचीन और आधुनिक पश्चात्य और पौराण्य—चिन्तकों और विचारों ने उनका विचारों का ढाला है फिर भी उन्हें किन्ना एक यन्त्रित या विचारधारा का अनुयायी नहीं कहा जा सकता । अद्वैत चिन्तन उनकी यात्राओं के सत्रों समीप है पर यदा तब उनकी

मात्र आत्मजीवनीपरक लेख जो उन्होंने लिखा है वह एक अप्रत्याशित अपरिचित पुस्तक रिलीजन इन टाजीगन³ में छपा है जो १९३७ में प्रकाशित हुई थी। यह निबंध—माइ सच फॉर टूथ—उनके लेखा में सबसे कम सुविदित है। लगता है कि व्यक्तिगत प्रचार में अरबि उन्होंने अपने दार्शनिक पूर्वजा से, प्राचीन भारतीय चिंतकों से उत्तराधिकार में प्राप्त की है।

जीवित दार्शनिक पुस्तकमात्रों में उनके चिंतन से सम्बन्धित खं में प्रकाशित एक खण्ड प्रथम टस ऑफ ए कंफेशन, में राधाकृष्णन स्वयं अपनी कम चुप्पी का स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—‘यह मेरा दरादा नहा है कि अपने व्यक्तिगत जीवन अपने माता पिता तथा पूर्वज, विवाह और पग्वार, अपनी रूचि अरबि के विषय में चर्चा करे। मुझे किसी विरोध सीमा में न उस क्षेत्र में ऊपर नहीं उठाया है जिसमें हमारे जन साधारण मगध करने रहते हैं, और जीवन का भार और चिन्ता मेरे हिस्से में पड़ी ही हैं। स्वयं मर लिए उनका साथकरना बहुत हानि हुए भी विवेक मुझे उनकी चर्चा करने से रोकता है।’ जब पुस्तक के सम्पादक प्रोफेसर गिम्पन और ब्योर के लिए आग्रह किया तो एक पत्र में उन्होंने लिखा—‘एक समय हमारा लेखन हमसे कम लेन पर भी हमने अधिक मूल्यवान् होता है। हम उसके लिए बहुत कष्ट उठाते हैं जैसे माता पिता अपने बच्चों के लिए उठाते हैं। जहां तक हमारे भाषा और रचना का प्रश्न है उनके कारण जीवन कठिन तीव्र और रोचक बनता है, हममें से कितने लोग नीचे अपनी आभा में भाँक पाते हैं?’⁴

सधपन्नी राधाकृष्णन का जन्म ५ मिनम्बर १८८८ को दक्षिण भारत के एक छोटे में गहर निरन्तन में हुआ था। तिरुन्नि गतादिपा से एक धार्मिक तीर्थ रहा है। इसका अनिश्चित माता पिता के गहन धार्मिक सम्बन्ध ने राधाकृष्णन का हिन्दू धर्म के आधारभूत मूल्यों में, आस्था में योग दिया। एक हान के निरन्ध में उन्होंने लिखा है—‘‘दान के विषय में विज्ञान की वनाय धर्म के दृष्टिकान की ओर मेरा रमान मरी प्रारम्भिक गिम्पा में निधारित हुआ।’’⁵ यह धार्मिक दृष्टि ईसाई मन्वाद्या में—सूयान भिगन हार्द स्कून, निरपति, कुरलीम कानन, यलोर और मन्नाम त्रिदिवधन कानेज में—अध्ययन के दिनों में और भी पृष्ट हुई। बारह वर्ष तक वे ईश्वर में जीवित आस्था के वानावरण में साँस लेते रहे। सकारात्मक पथ के अलावा, कम दमार्द पग्विग ने उनके चिंतन को नकारात्मक रूप में भी प्रभावित किया। भारतीय धर्म और चिन्तन की आलोचना, जो वे अपने गिम्पा से निरन्तर सुनते थे, उनका मरम आस्था पर आधारित करती थी। उनके ही गवां में—‘‘हम भाँति हिन्दू विवाग के

वच प्रखर शब्दा में रखा गया है—“टंगोर का परमात्मा ससार से सुविधाजनक दूरी पर स्थित कोई अमृत सत्ता नहीं है, बल्कि वस्तुओं के क्षेत्र में स्थित एवं मृत गतिमान जीवन है जो हवाओं के गजन और सागर के ज्वार को उत्पन्न करता है। टंगोर में दृष्टि की अशक्तता है जो गरीर और मन में, जड़ और चेतन में कोई अन्त विभाजन नहीं सहन कर सकती। उनका सदृश मीमांसा है—धर्म पर दृढ़ रहो धर्मों को जान दो। आत्मा की अस्तित्व को पाना आवश्यक रूप में परम्परागत मार्गों का अनुसरण करना नहीं है क्योंकि भक्ति के मार्ग पर कोई चरण चिह्न नहीं होता।”^{१२}

कहा गया है कि इस पुस्तक में राधाकृष्णन ‘अनजाने ही अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के क्षेत्र में अपनी नयी भावी उड़ानों का प्रारम्भ कर रहे थे। उनके ऊपर टंगोर का प्रभाव गहरा और व्यापक है यद्यपि कवि का मूलभूत रुझान निरपेक्ष आदर्शवाद के दंगन में, जिसके लिए राधाकृष्णन का सदा ही आग्रह रहा है। बुनियादी तौर पर भिन्न है। इस बात से एक तो उनकी उत्थारता प्रकट होती है और दूसरे उनका यह विश्वास कि टंगोर का दर्शन वस्तुओं की मूलभूत एकता के विषय में गहरी अंतर्दृष्टि को प्रकट करता है। टंगोर की कला और चिंतन के इस पक्ष पर उम्र समय बस दिया जाना आवश्यक भी था क्योंकि इस बात की आशंका थी कि कवि को केवल भावतिरेकपूर्ण गीता का अनुप्राणित गायक माना जाएगा।

दो वर्ष बाद राधाकृष्णन की पुस्तक रेन आफ रिस्कीजन इन द इम्पेरीयलिज्म की प्रकाशित हुई। इसमें लेखक तकनीक के प्रचलन समर्थक और धर्म के तीव्र आलोचक के रूप में सामने आता है। इस पुस्तक का स्वर यथार्थ और विवादात्मक है और टंगोर पर उनकी पिछली पुस्तक से एकदम भिन्न है। लेखन की दृष्टात्मक गुणलता और उत्साह की मानत हुए भी बहुत से समीक्षकों ने इस पुस्तक को विवादपूर्ण और कमजोर बताया। बात में सत्य राधाकृष्णन ने स्थापित किया कि उनका धर्म की दंगन से पथक करने का प्रयास ‘भक्ति महत्वाकांक्षी था। वे रेन आफ रिस्कीजन का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि सत्तना का आधार पर निरपेक्ष त्राण्णवात् अपरिहाय है और बहुत से आधुनिक पाश्चात्य चिंतक अपने धर्मपरक पूर्वग्रह के कारण ही निरपेक्ष विरोधी मार्ग ताम्रा में चिपके रहते हैं।

राधाकृष्णन धर्म की दंगन में ‘विघ्नकारी तत्त्व बताते हैं। वे कहते हैं— धर्म-व्यवस्था दंगनित अध्ययन का एक छोटा अवयव है, पर उसको अध्ययन में नियामक नहीं होना चाहिए। यह धर्म या दंगन दोनों में से किसी

व्याख्या इतनी लचीली है कि शंकराचार्य के बट्टर अनुयायी को उसमें बहुत-से दोष दिखाइ दग। उनके निष्कर्षों का जितना अधिक प्रभाव दूसरों की राय का है, उतनी अपनी अंतरतम की अनुभूतिया का उससे कम नहीं है। अपने ऊपर प्राचीन दाशनिषों के ऋण को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं— किंतु मेरे चिंतन का एक और भी स्रोत था। वह मेरी अपनी अनुभूति से उपजा था जो कभी भी वसी ही नहीं हो सकती जैसी पढ़ने या अध्ययन से प्राप्त होती है। ऐसा चिंतन तत्कालीन स्थापनाओं से सिद्ध होने के बजाय आध्यात्मिक चेतना से उपजता है। दंगन जितना सत्य से साक्षात्कार द्वारा उत्पन्न होता है उतना उन साक्षात्कारों के ऐतिहासिक अध्ययन से नहीं।

३

राधाकृष्णन के मुख्य दशन-ग्रंथों का बालकमानुसार सर्वेक्षण बड़ा उपयोगी हो सकता है। इन रचनाओं को उनके विचारों के विकास में मील के पत्थर मानकर हम उनकी आदर्शवादी विश्वदृष्टि की सामान्य पुष्टि के साथ साथ नई प्रवृत्तियों के उदय और हर अवस्था में बल के परिवर्तन को देख सकते हैं। ऐसे सर्वेक्षण से हमें उनके द्वारा अपने दाशनिष विवेचन में व्यवहृत ऐतिहासिक आलोचनात्मक और तुलनात्मक पद्धतियों के अंतर्सम्बंध को देखने में भी सहायता मिल सकती है।

राधाकृष्णन के जीवनकालीन लेखन में बहुत से ऐसे रत्न दिखाई पड़ते हैं जो बाह्य में भी टिके रहे। एथिक्स आफ वेदांत नामक उनके एम० ए० के प्रबंध से प्रकट है कि विद्यार्थी जीवन में ही वह अद्वैत दशन की प्रचलित अवधारणाओं से असंतुष्ट थे। यह प्रबंध इस आलोचना का उत्तर था कि अद्वैत दशांत में सांसारिक आचरण का कोई दृढ़ आधार नहीं है। सत्ताईस वर्ष की आयु के पहले ही राधाकृष्णन के बहुत से निबंध द मोनिस्ट माइंड जर्नल ऑफ फिलासफी और द इंटरनेशनल जर्नल आफ एथिक्स जैसी अंतर्राष्ट्रीय ग्याति की पत्रिकाओं में छप चुके थे। उनके विषय में रचित अपूर्व विस्तार दृष्टि-आचर होता है— कम और स्वतंत्र स्वरूप, 'यूनानी नीतिशास्त्र में प्रकृति और रति', मुद्ध के सम्प्रदाय में एवं भारतीय दृष्टिकोण, शिक्षा में नतिकता और धर्म, 'योगों की ईश्वर मन्त्र की धारणा' आदि।

राधाकृष्णन ने सम्पूर्ण दाशनिष लेखन के क्षेत्र में प्रथम अपनी पुस्तक फिलासफी ऑफ रवोब्रनाय टगोर^१ से किया जा १९१८ में प्रकाशित हुई। इसमें यह टगोर के चिंतन में यदि औपनिषद तत्त्व पर है और उसकी बलवत् ईश्वरवादी पृष्ठभूमि की कुछ उपमा हुई है। फिर भी कवि के सद्गता का सार

राजनयिक, राजनीतिक और सामाजिक—मामलो में खिंचते गए हैं। उनकी इस काल में लिखी पुस्तकें बौद्धिक रचियाँ का और भी विस्तार सूचित करती हैं। उनका ध्यान दर्शन के केन्द्र से हटकर उसकी परिधि पर तत्त्वमीमाणा से हट कर नीतिशास्त्र, सोदयशास्त्र और राजनीतिक चिन्तन पर चला गया है।

इन पुस्तकों के शीर्षकों से ही यह प्रकट है कि उनके विचार किस ओर बढ़त रहे हैं। गौतम, द बुद्ध,^{१६} धम्मपद,^{२०} द टोचिंग आफ द बुद्ध,^{१७} भारतीय संस्कृति में बौद्ध धर्म के अखण्ड स्थान की गहरी प्रतीति को प्रकट करती है। महात्मा गांधी^{१८} और ग्रेट इण्डियंस^{१९} राष्ट्रीयता की भावना के रूप में चिन्तन धाराओं की 'यास्या' की बढ़ती हुई इच्छा को प्रकट करती है। एजुकेशन, पालिटिक्स एण्ड वार,^{२४} फ्रीडम एण्ड कल्चर,^{२५} इज दिस पीस? 'श्रीर द रिपेरिट इन मन'^{२६} इस उतनी ही तीव्र चेतना को व्यक्त करती हैं कि हमारे इस जटिल युग में मानवता के सामने जो व्यावहारिक समस्याएँ हैं उनके साथ दार्शनिक चिन्तन का गठन घन होना चाहिए। ईस्ट एंड वरल्ड इन रिलीजन^{२७} ईस्टन रिलीजंस एण्ड वेस्टन थाट,^{२८} रिलीजन एंड सोसाइटी,^{२९} और द रिलीजन आफ द रिपेरिट एण्ड द चर्च स नीड^{३०} में दर्शन तथा 'यापकतम अथ म धर्म' की मूलभूत एकता में स्थायी आस्था का अभिव्यक्ति मिली है।

यहाँ इन पुरतकों का उल्लेख उनके कालक्रम में नहीं किया गया है। पर वे सभी १९३२ के बाद लिखी गई थीं। मर्यादित दृष्टि से वे राष्ट्रावृत्तन के चिन्तन को एन आइडियलिसट व्यू आफ लाइफ की मायताओं से बहुत आगे नहीं ले जाती। फिर भी उनका बहुत बड़ा महत्त्व है। उनके द्वारा ही गंधा कृष्णन को प्रथम कोटि के रचनात्मक दार्शनिक के रूप में मान्यता मिली है ऐसे मानववादी के रूप में स्वीकार किया गया है जिनकी आवाज सत्ता विवादी और विभाजक तरंगों के विरुद्ध मेल मिलाप, एकता और अखण्डता के पक्ष में उठती रही है। उनके हल में लेखन में ऐसी सौम्यता और सहिष्णुता प्रकट होती है जो उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में सदा नहीं मिली थी। उनमें राष्ट्रीय तथा धार्मिक पक्षपात का पूर्णतः अभाव है। राजनीतिक क्षेत्र में वे शक्ति से अधिक अनुनय को संगठन से अधिक स्वाधीनता को, मशीन से अधिक आत्मा को मायता देने के दृढ़ निश्चय की सूचक हैं। इस बौद्धिक प्रीतिना के अनु रूप हो गंधाकृष्णन की 'मलो में भी एक नई गम्भीरता और राजसीयता का गड़ है। उनकी पुरानी विवादमूलक उग्रता कुछ कम हो गई है। वह अब पहले जसी मूक्तिपूण भड़कीली और उत्तजक तो नहीं है पर सर्वांगीण ज्ञान की अभि-
व्यक्ति व निरर्थक विवसनीय ग्राह्य बन गई है।

वे भी भविष्य के लिए गुप्त नहीं है कि धर्म ही दान का शास्त्र बिन्दु और प्रदान उद्देश्य बन जाए।¹³ वे सीवनीज विनियम जेम्स बगना और एन्थनी यूकेन के विचारों का विवरण करके यह दिखाते हैं कि ये चिन्तन मूल्य अपने दारवादी धार्मिक रूढ़ानों के कारण ही एक सत्तावाद को अस्वीकार करते हैं। राधाकृष्णन की किसी अन्य पूर्ववर्ती ग्रंथों पर वर्तनी रचना में धार्मिक और दार्शनिक रूढ़ानों के बीच खाड़ पर नगना अधिक बन नहीं है। वास्तव में दाद में तो उनका प्रयत्न यह दिखाने का रहा है कि दोनों के बीच कोई मूलभूत विरोध नहीं है।

१९०० और १९०६ के बीच का काल राधाकृष्णन के जीवन का फलदायी युग है। इन वर्षों में उनकी तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई— इण्डियन फिलॉसफी, हिंदू यू आफ लाइफ और कर्म। इनमें से प्रथम का उनका बीस वर्ष का परिश्रम और मनन का फल है उनकी महान कृति माननी जाती है। यह पुस्तक विवरण, आलोचना तुलना और व्याख्या का अपूर्व मिश्रण है। लेखक अद्वैत यदातक प्रति अपने भुक्तव्य का छिपाता नहीं पर वह हमारी पद्धतियों का सकारात्मक तत्त्वा को सुरक्षित पहचानने में समर्थ है। धर्म विराट् और भौतिकवादी पद्धतियों तक को उनका प्राप्य श्रेय मिलना है। राधाकृष्णन भारतीय चिन्तन की मूलभूत एकता का उद्घाटन करते हैं और हिंदू धर्म तथा उन परम्पराओं में निहित पाई जान वाली सामाजिक अवधारणाओं का परोक्ष वर्णन करते हैं। वे पाश्चात्य लेखकों द्वारा भारतीय ज्ञान पर लगाय गए आरोपों का भी विवरण करते हैं और यह सिद्ध करने हैं कि भारतीय चिन्तक न तो धर्म शास्त्रों के ही अथवा अथवा और न नैतिक तथा सामाजिक समस्याओं का प्रति ही उदासीन थे।

इण्डियन फिलॉसफी¹⁴ का उद्दिष्ट ही बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य में श्रेष्ठतम योगदान के रूप में स्वागत किया गया। इस ग्रंथ की लोकप्रियता कभी कम नहीं हुई। हमारे भारतीय चिन्तन की कई विविध समस्याओं पर बहुत से प्रवर्धों का प्रेरणा दी है और गोपकतथ्या की एक पूर्ण पीढ़ी की निहित क्षमताओं को उभारा है। किन्तु इस ग्रंथ का सबसे प्रभावशाली गुण उनकी व्यापकता नहीं बल्कि इसका अविरत गैलीगैत श्रेष्ठता है। निम्नलिखित परभावना में ज्ञान का बहुत कम इतिहास की दमक तुलना हो सकती है।

१ २६ में हिंदू यू आफ लाइफ का प्रकाशन हुआ था राधाकृष्णन के आत्मज्ञान में दिव्य गण आपना पर आधारित है। इसमें उनका मत है कि हिन्दू धर्म गहरा सिद्धान्त का पुत्र नहीं बल्कि एक जीवन पद्धति है एका दृष्टि-

अलेक्जेंडर तब मूल्य और सत्ता के चरम सम्बन्ध की आदर्शवादी दृष्टि बराबर बनी रही है।' ४३

किंतु कभी कभी ऐसा जान पड़ता है कि राधाकृष्णन यह अनुभव करते हैं कि जहां पूर्व में दंगन मूल्य की बसोटी पर निरंतर खरा उतरता रहा है वहीं पश्चिम उससे भटक जाता रहा है जिसके, विशेष रूप में आधुनिक युग में, विनाशकारी परिणाम हुए हैं। जोड़ ने इस पर एक उपयुक्त टिप्पणी की है। राधाकृष्णन की अखण्ड विश्वदृष्टि का उनके मूल्यपरक ज्ञान की दम मानत हुए, जोड़ कहते हैं—'व्यक्तित्व की जिस पूर्णता की ओर राधाकृष्णन के पक्ष की धमनिरूपे न मनोपा में अनुप्राणित उपस्थित हमारा आह्वान करते हैं वह किसी न किसी रूप में मूल्य से जुड़ी हुई है। वह हमें बताते हैं कि जिस सभ्यता में मूल्यों और मूल्यों की चेतना का अभाव है वह जीवित नहीं रह सकती।' ४४ वास्तव में जोड़ मानते हैं कि इसी प्रत्यय में पश्चिम के लिए राधाकृष्णन के सन्देश का सार है। मूल्यों के पुनरुत्थान और मूल्यबाध की इस मांग में ही पश्चिम के लिए राधाकृष्णन का संदेश का सार निहित है।' ४५

सक्षम में राधाकृष्णन दंगन में अपेक्षा करते हैं कि वह गतिशील और स्वाभाविक हो सत्ता की सम्पूर्णता और जगत के विभिन्न पक्षा की एकता को मोटे तौर पर स्वीकार करे और मूल्य की पहचान रक्षा और प्रगति में सहायता दे। दंगन के स्वरूप और कृत्य की ऐसी धारणा हान पर यह स्वाभाविक ही है कि चिन्तन की विभिन्न पद्धतियों के विषय में उनका अपना निगम अत्यधिक उत्तम और सहिष्णु हो। राधाकृष्णन की दृष्टि में उपरोक्त कसौटियों पर खरी उतरनेवाली सभी पद्धतियाँ और सिद्धांतों में सत्य का एक अंश विद्यमान है। बार बार वे यही अनुरोध करते हैं कि जो विचारधारालें हम विश्वसनीय न जान पड़ें उनके विषय में विवादात्मक को बजाय सहानुभूतिपूर्ण रचना अपनाया उचित है। अपने एक विख्यात वाक्य में वे कहते हैं— सहिष्णुता असीम की असंयमीलता के प्रति ससीम मन की धृष्टांशलि है। ४६

राधाकृष्णन का विश्वास है कि हम चिन्तकों के सवश्रम अंग की धारणा करनी चाहिए उनके हीनतम अंश की नहीं। ४७ कविता का मूल्यांकन हम उनकी उच्चतम प्रेरणाओं के आधार पर करते हैं उन पक्षों के आधार पर नहीं जो उ होन अस्पष्टता अथवा आलस्य व क्षणा में या हो रहे हों। तो फिर दार्शनिक की दृष्टि का मूल्यांकन उसकी सबसे प्रखर अंतर दृष्टि का क्षणा के आधार पर करने में हम क्या निषेधना चाहिए? दंगन में गतिहासिक और तुलनात्मक पद्धतियाँ व उपयोग में राधाकृष्णन की अपनी सफलता भी चिन्तकों

दगन के सम्बन्ध में राधाकृष्णन का दृष्टिकोण सर्वांग अथ म विरोध जैसा नहीं है। 'दशन अवधारणाएँ रचना नहीं, बल्कि अतद दृष्टि का प्रदर्शन है।' ^२ इस कथन से, दगन से उनकी अपेक्षा का आभास मिलता है। उन्होंने बार-बार यह चेतावनी दी है कि दगन असम्भव अवधारणाओं के विषय में निरन्तर विवाद का नाम नहीं। वह जीवन में जुड़ा हुआ है। चिन्तन जीवन में भिन्न है पर वह उसका प्रति निरूपण नहीं रह सकता। मानव-जीवन की सारी बड़ी विशेषता यही है कि वह मूर्त्ति में भिन्न है। इसलिए दगन द्वारा मृत्यु का समझन और रक्षा करने का बहुमुखी प्रयास आवश्यक है और उसकी निष्पत्ति एक विश्वदृष्टि में ढालनी चाहिए। यदि उस उपादय होना है तो वह 'गुड बौद्धिक कार्य' नहीं रह सकता। उसे घटकर आत्मा की चिकित्सा का रूप लेना चाहिए।

उनके इस दृष्टान्त को देखते हुए हममें कोई आश्चर्य नहीं कि जानमीमामा के हाल के विवाद—विरोध के बिना तात्त्विक प्रयोगवादी बड़े उत्साह से जुड़े रहते हैं—उन्हें बहुत आकर्षित नहीं करते। यह नहीं कि जानमीमामा के प्रति वे उदासीन हैं। जसा कि हम उनके अतः प्रतीति विषय के सम्बन्ध में देखेंगे, राधाकृष्णन यह जानते हैं कि दार्शनिक मतभेद अतः 'जानने की विधि' के विषय में मतभेद ही हैं। पर उन्हें लगता है कि जब जानमीमामा अति विपरीत हो जाता है तो वह दगन की सांस्कृतिक प्रासंगिकता को निगलन लगती है। और न कि हम आग का म अवेले हैं। जोड़ न इस विषय में कहा है—'दार्शनिक अपनी विलगता का गुण समझते हैं, और जानमीमामा के गुण विवाद में उलझकर कोई तत्त्वमय प्रविधि रचने में लग रहे हैं। व्यावहारिक समस्याओं से हम प्रविधि का विलगता से इस योगपूर्ण उचित का दल मिलता है कि दगन की समस्याएँ जीवन की समस्याओं के समाधान से अधिक उनमें पलायन हैं।'^३

कुछ तो हम जानें कि दगन प्रत्येक बड़े सर्वांग में चलता रहा है और कुछ हम कारण कि मानव-जाति के अन्तिम में सदा दशन द्वारा प्रस्तुत आत्मा का समझन नहीं किया है। लगभग प्रत्येक युग में यह प्रश्न पूछा गया है—क्या दगन की कोई भी उपाय है? इस प्रश्न का अनापूर्वक नहीं आता जा सकता और न उसे केवल अज्ञान या पूर्वज्ञ की उपज ही बताया जा सकता है। दगन का इतिहास सफलताओं का है। अदिष्ट इतिहास नहीं रहा है। राधाकृष्णन 'तीन शताब्दियों के अविच्छिन्न दार्शनिक प्रयासों में

समीप स्व की स्थिति, ज्ञान के साधन और नतिक आचरण की कसौटिया के विषय में उनके मूलभूत विचारों में कोई गम्भीर बहुधाव नहीं हुआ है। उनके प्रारम्भिक और परवर्ती विचारों में निश्चय ही इतना अन्तर नहीं पड़ा है जितना बर्ट्रैंड रसेल के एनलिसिस आफ माइण्ड और प्रावलेम्स ऑफ फिलासफी में अभिव्यक्त प्रारम्भिक और परवर्ती विचारों में दिखाई देता है।

यदि राधाकृष्णन के विचार इतने पर्याप्त निश्चित और स्थिर हैं कि उनके दर्शन के ऊपर कोई लब्धिले लगाना उचित हो ? एक सीमा तक इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक हो सकता है। हम उन्हें आदर्शवादी कह सकते हैं। अपने कम जीवन की किसी भी अवस्था में राधाकृष्णन आदर्शवादी के अतिरिक्त अर्थ कुछ नहीं रहे। उनको 'आध्यात्मवादी' भी कहा जा सकता है। वे कहते हैं कि सत्य आध्यात्मिक है। सत्ता का चरम तत्त्व ठोस स्थिर और अपेक्षित जड़ पदार्थ नहीं। वह आत्मा का सार ही है। *५ पर वे स्वयं आध्यात्मवादी की अपेक्षा आदर्शवादी शब्द अधिक पसन्द करते हैं।

राधाकृष्णन आदर्शवाद को विश्वव्यापी स्वीकृति के योग्य दर्शन मानते हैं। 'यदि हम दार्शनिक सम्प्रदायों के बीच छिड़ जादविवाद के गोर में वह बिना उनको बनाने वाली गहरी धाराओं का ध्यान से देखें तो हम आदर्शवाद की अन्तर्दृष्टि पर आग्रह की ही प्रबल प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, चाहे उनकी भाषा और शैली कितनी ही भिन्न क्यों न हो।' *६ यह प्रवृत्ति इस विचार के लिए प्रतिबद्ध नहीं है कि जगत मन का बना है, न वह किसी सकीर्ण ज्ञानमीमासीय सिद्धांत पर आग्रह करती है। पर एक बात पर यह दृढ़ है—'इसमें उस विचार से कोई साम्य नहीं जो सत्ता को तकनाहीन अथवा प्रवृत्ति या असाध्य दयनीय भूल मानता है। यह प्रवृत्ति जीवन का साधक और साक्ष्य मानती है।' *७ राधाकृष्णन आदर्शवाद को न केवल इसी अर्थ में स्वीकार करते हैं बल्कि इसके विपरीत पढ़ने वाले सभी सिद्धांतों को अस्वाकार करते हैं। किसी न किसी सदम में उन्होंने प्रवृत्तिवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद रहस्यवादी राष्ट्रवाद आदि की जाँच करके उन्हें—और प्रत्यक्ष वादा अर्थ में मानववाद को भी—या तो अपर्याप्त अथवा एकांगी और भ्रामक पाया है।

किंतु आदर्शवाद शास्त्र का अवबोधन बहुत व्यापक है और कई भिन्न प्रकार के दर्शन के लिए उसका उपयोग किया गया है। इसलिए यह भी पूछा जा सकता है कि राधाकृष्णन किसी विशेष प्रकार के आदर्शवाद के अनुयायी हैं अथवा आदर्शवादी दृष्टिकोण के साथ सामान्य सम्बद्धता से संतुष्ट हो जाते

का उनके सबधेष्ठ जग के आधार पर मूल्यांकन करने के इस मिश्रण का ही परिणाम है। उनका विश्वास है कि दूसरा के विचारों के विवेचन को नकारात्मक पक्ष पर पूरा पूरा ध्यान तो देना चाहिए पर उसका बल सकारात्मक तत्वों पर होना चाहिए। इस विश्वास के कारण व मायमवाद जैसी धार भौतिकवादी विचारधारा की प्रशंसा करने में भी नहीं मिलक है जा कइ दृष्टिया म राधा-कृष्णन की अपना बुनियादी मायताओं के सवथा विपरीत है। अपने विपरीत दृष्टिकोणों के प्रति उनकी सहिष्णुता का उल्लेख करत हुए एक अवाचीन लेखक ने लिखा है— 'राधाकृष्णन की दूसरे दृष्टिकाओं के साथ कल्याणाशील महानुभूति इतनी अधिक है कि उससे हमें वाचस्पति मिश्र का स्मरण होता है जिहोंने भारतीय चिन्तन की लगभग सभी पद्धतियों पर टीका की और प्रत्यक्ष पर इस प्रकार लिखा मानो व उसके सिद्धांतों में स्वयं विश्वास करत हो।' ४५ इस 'कल्याणाशील महानुभूति' का महत्व हमारे अपने इस युग में विगप रूप में अधिक है जब ववारिक मतायता के कारण इस बात की आशंका है कि मानव जाति ईसाई धार्मिक अत्याचारों के अघयुग की ओर गैर जाए और पुनर्जागरण काल से अब तक उदार चिन्तन की जो उपलब्धियाँ रही हैं व नष्ट हो जाएँ।

५

किन्तु बहुत से दृष्टिकोणों से महानुभूति का अर्थ उनमें से किसी एक को अधिक पसंद न करना नहीं। राधाकृष्णन की सहिष्णुता और दृष्टि की व्यापकता का कभी-कभी यह अर्थ लगाया जाता है कि मूलभूत प्रश्नों पर व कोई निगम नहीं देना चाहते। ऐसा समझना जितना अनुचित है उतना ही सही भी। यह सही है कि राधाकृष्णन के कुछेक प्रश्नों पर अस्पष्टता का दोष लगाया जा सकता है। उनके बहुत से कथन कोई बात मित्र करने के बजाय प्रेरणा देने और सुमान का ही काम करत हैं। ऐसे कथन व हम चिन्तन से करत हुए जान पड़ते हैं कि स्पष्टता की कमी सघनता और प्रेरणा की सीढ़ता से पूरी हो जाती है। किन्तु इनके सभी मूलभूत प्रश्नों पर उन्होंने निश्चित विचार भी प्रकट किए हैं।

यह सच है कि इन विचारों को कटुतापूर्वक माना अथवा अस्वीकृत नहीं किया गया है। बीच बीच में उन्हें परधर्मी अनुभव और चिन्तन के आधार पर दोहराया भी गया है। राधाकृष्णन ने इनकी विविष्ट समस्याओं पर अपने विचारों के तल में गरम का एक विशिष्ट न चोखट के भीतर सहोदर करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में उनके चिन्तन की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में अनिवार्य रूप से बल से अंतर पड़ता रहा है। पर सत्ता के स्वभाव

विशेषणों का प्रयोग है जो सामान्यतः एक साथ नहीं प्रयुक्त हो सकते। पर यह स्थिति अनिहय है। चरम सत्ता 'सर्वथा भिन्न' है ऐसा अनास्त है जो हमारी अवधारणाओं द्वारा गम्य नहीं, या हमारी समझ द्वारा पकड़ में नहीं आ सकता। उसका केवल नकारात्मक रूप मही अथवा प्रतीयमान विरोधी विवरणों द्वारा ही वर्णन हो सकता है।^{१४६}

पूर्ववर्ती पराग्राफ के अंतिम वाक्य में प्रतीयमान शब्द से इस कठिन प्रश्न के सम्बन्ध में राधाकृष्णन के रक्त का आभास हम मिलता है। परम सत्ता की हम 'विराधा से आच्छादित' रूप में वस्त्वना नहीं कर सकते, और फिर भी जब हम उसके वर्णन का निश्चित प्रयास करने लगते हैं तो हम विरोधी प्रतीत होने वाले शब्दों का प्रयोग करने को बाध्य होते हैं। इस कठिनाई में बचने के लिए नकारात्मक घमदशन का सहारा लिया गया है और ईश्वर को कहा गया है यह नहीं पर यह अथवा केवल 'नेति, निति'।^{१४७} राधाकृष्णन इन विधि के उपयोग में कोई बुराई नहीं समझते और बहुत सी स्थितियों में उन्होंने इसका बड़ा प्रभावकारी उपयोग किया है।

इसका एक अच्छा उदाहरण व रिलीजन की नीड़ में मिलता है— चरम सत्ता का पूर्णगान कठिन है और उसका वर्णन असम्भव। हम इसका निश्चय तो हो सकता है कि ईश्वर क्या नहीं है पर क्या है 'सका नहीं। वह कोई प्रकट ज्ञान वाला देवता नहीं, न कोई अत्यधिक चतुर यात्रिक इजीनियर है न जगत के काम में चाह जब हस्तक्षेप करने वाला उसका आधिभौतिक स्वामी। वह ऐसा ईश्वर नहीं जिसके रूप किसी नियम द्वारा अधीन हैं अथवा जो पक्षपात करने वाला और प्रिय अप्रिय का अंतर करने वाला है।^{१४८} इसका यह अर्थ नहीं कि परम सत्ता में कोई निश्चित तत्त्व नहीं। स्पष्ट करते हुए कहते हैं— हम नकारात्मक विवरणों का उद्देश्य है ईश्वर की, उस पूर्णतः 'अर्थ' की अनुभवात्मकता के विषय में आत्मा के भाव का प्रकट करना, जिसके विषय में नकार के अतिरिक्त और कोई निर्देश नहीं हो सकता।^{१४९} नकारात्मक दृष्टिकोण का उद्देश्य उस 'असक्त' सुनिश्चित अस्तित्व से वचित करना नहीं बल्कि उसके स्वरूप का पूर्णतः समझने में हमारी अवधारणाओं की अपर्याप्तता को प्रकट करना है। किन्तु 'ईश्वर की अक्षय सुनिश्चितता सम्पन्न अवधारणात्मक रूपों में फूटती रहती है।'^{१५०}

यदि चरम सत्ता अवयवितक निरपेक्ष तत्त्व है जिसके बारे में कोई भी निश्चित निर्देश नहीं किया जा सकता, तो व्यक्तिगत ईश्वर की अवधारणा को हम क्या मूल्य दे सकते हैं? यह दान और घम दोनों ही का वैद्रीय प्रश्न

है। इस बात का उत्तर भी बहुत निश्चित हो सकता है। राधाकृष्णन न यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि आदगवाद ने पूव या पश्चिम में जितने भी रूप लिये हैं उनमें से निरपेक्ष आदगवाद ही, बिनाशकर जिस रूप में गहराचयन उसका प्रतिपादन किया है उनको सबसे प्रिय है। वे कहते हैं— 'मेरा मत है कि जो पद्धतियाँ दान का खेल सीधे-सीधे और ईमानदारी के साथ पूर्व कल्पनाओं से मुक्त होकर और धार्मिक सत्यता के साथ खेलती हैं वे अंत में निरपेक्ष आदगवाद में ही जा पहुँचती हैं।' ५२ उनका यह भी विश्वास है कि बहुत से आधुनिक यूरोपीय चिन्तक केवल अपने धार्मिक मन्त्रों का कारण ही निरपेक्ष आदगवाद का मानने में असमर्थ रहते हैं यद्यपि अधिकतर वे स्वयं भी इससे अवगत नहीं।

एक बार यह निश्चय कर लेने के बाद कि गहराचयन का दृष्टिकोण ही सबसे अधिक सतोषजनक है राधाकृष्णन स्वभावतः ही निरपेक्षिक ब्रह्म को चरम सत्ता मानते हैं। इसका अर्थ है कि सर्वोच्च दार्शनिक अनुभूति में धार्मिक ईश्वर की धारणा से परे जाना आवश्यक है। 'यद्यपि ईश्वर का धार्मिक स्वभाव कुछ धार्मिक आवश्यकताएँ पूरी करता है, कुछ अन्य आवश्यकताएँ उसके द्वारा पूरी नहीं होती। सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति में हम विराम और परिपूर्णता का, नित्यता और सम्पूर्णता का भान होता है। इन आवश्यकताओं ने मानव चिन्तन के प्रारम्भ ही से ईश्वर को ऐसी रागहीन सत्ता मानने के लिए प्रेरित किया है जो विद्वत् जीवन की विरामहीन उत्पत्ति पुलक के परे है।' ५३ एक बार ऐसी अवधारणा के चरम रूप में विकसित हान पर कोई ऐसा स्वता, जिसकी निरपेक्षता चाह किन्तु ही कम मात्रा में क्या न हो, सीमित हो हम समुपलब्ध नहीं कर सकता। "यदि ईश्वर जगत् से संबद्ध है काल के अधीन है यदि उसका काय मनुष्य की स्वभावतः और जीवन की परिस्थितियों द्वारा सीमित होता है तो अपने जीवन के गुण में वह चाहे जितना असीम क्यों न हो, चक्रि, ज्ञान और औचित्य में वह ईश्वर की ही एक अभिव्यक्ति मात्र है।" ५४

मानव मन की सर्वोच्च आकांक्षा है 'सत्य को अपने आप में, आत्मा में—बलि काल से पहले और अनेकता से भी पहले' अन्वेषण का प्रयास उस परम एक को जानना। चरम सत्ता 'गुड, एक और अनन्त है, कुछ नहीं और सभी कुछ जो प्रत्येक निश्चित अभिव्यक्ति रूप के पर है और फिर भी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का आधार है वह एक जिसमें सम्पूर्ण प्राप्त है और फिर भी सम्पूर्ण विहीन है।' यह विवरण भले ही हम चकरा दे क्योंकि इसमें एक

कहना है— उनका सिद्धांत ऐसा है जिसे किसी भी सगत निरपेक्ष आदर्शवाद की मानना पड़ेगा, अर्थात् निरपेक्ष ही एकमात्र चरम और सम्पूर्ण सत्ता है, और अनुभूत जगत स्पष्ट ही गौण सत्ता है सापन्न और पराधीन, पर अनुभूत जगत इसी कारण असत्य नहीं है। ^८ वास्तव में राधाकृष्णन का आग्रह है कि शक के दान की तत्कालीन चारणा करने पर उस जगत की सत्ता का पूर्ण अस्वीकार नहीं माना जा सकता। इस बचन के समर्थन में वे माया की अवधारणा पर भी विचार करते हैं। वे मानते हैं कि माया के सिद्धांत का भी निरपेक्ष के नेतिमूलक वर्णन की भाँति भारतीय चिन्तकों ने विशेष उद्देश्य से प्रयोग किया है। यह उद्देश्य है काल और नित्यता के बीच, प्रतीति और सत्य के बीच व्यवधान को सूचित करना। ^९ माया जगत की सगुणता की सूचक है अनुभवसिद्ध स्व और उसके अनुरूप जगत के गोचर स्वरूप की सूचक है। माया का यह अर्थ नहीं कि अनुभूत जगत अपने भीतर स्थित आत्माओं सहित भ्रम मात्र है क्योंकि ब्रह्माण्ड का समस्त प्रयास एक परमात्मा की ओर उन्मुख और उसी के द्वारा सिद्ध है। ^{१०} यह परमात्मा प्रत्येक वस्तु से पृथक् होकर भा प्रत्येक वस्तु में आलम्बित है।

माया का सिद्धांत सर्वोच्च सत्ता के निम्नतर काटिया को अलग करके, निरपेक्ष सत्य और विचारित सत्य के बीच अंतर को मानव मन पर अवित करने के प्रयास का सातत्य मात्र है। यह उच्च व्यावहारिक है—जो कुछ नश्वर है उससे ध्यान हटाकर उस पर स्थित करना जो समस्त मूल्य का आधार है। जब हिंदू चिन्तक हमसे अपने आपको माया से मुक्त कर लेने की बात कहते हैं तो वे हम बन्धीभूत रखने वाले मिथ्या मूल्यों के बंधनों का तोड़ने के लिए कहते हैं। वे जीवन को भ्रम भ्रमज्ञाने अथवा मसार के ब्रह्माण्ड के प्रति उदासीन होने की माँग नहीं करते। ^{११} यह मानना पड़ता कि यह ध्यानात्मक आकाश के निरपेक्षवाद का कठारता को कुछ कम करती है यद्यपि विद्वज्जन इस बात में गायद असहमत हैं कि आत्मा के आधार पर ऐसी व्याख्या उचित है।

माया के सिद्धांत का एक और भी पक्ष है जिसका ओर राधाकृष्णन ने प्रायः ध्यान खींचा है। यह रहस्य का पक्ष है जो मानव स्वभाव के अविमुलभ और बल्पनाप्रिय पक्ष को रुचिकर लगता है। निरपेक्ष असीम सम्भावनाओं का आदर्श निवास है। ^{१२} उनमें से एक विशय सम्भावना का कारण जगत की गृष्टि हुई है। पर ऐसा क्यों हुआ है? हम नहीं जानते, और माया का केवल इस रहस्य की याद पाने में मानव मन की असमर्थता का ही सूचित

है। 'धर्म के दशम की महान समस्या यह रही है कि निरपन्न सत्ता के नित्य सम्पूर्ण स्वरूप का उसके ऐसे आत्म निपायक तत्त्वमूलक स्वरूप के साथ सामंजस्य कैसे किया जाए जो ऐसे कालगत विकास में यत्न होता है जिसमें प्रकृति और मनुष्य दोनों शामिल हैं।' ^६ निरपन्न सत्ता का स्वीकार कर लेने पर क्या ईश्वर अनावश्यक हो जाता है ?

राधाकृष्णन का उत्तर है कि वैयक्तिक ईश्वर कुछ बड़ी गहन आवश्यकताओं को पूरा करता है। "हम ऐसे निरपन्न की पूजा नहीं कर सकते जिस किसी ने नहीं देखा न कोई देख सकता है, जो ऐसे प्रकाश में रहता है जिस तक कोई नहीं पहुँच सकता।" ^७ ससीम मन निरपन्न की केवल ईश्वर के रूप में ही कल्पना कर सकता है। 'सर्वोच्च-सत्ता व्यक्ति को बहुत से गुणों से युक्त जान पड़ती है। वैयक्तिक ईश्वर की अवधारणा सर्वोच्च तत्त्वसम्मान सत्य का गहनतम धार्मिक आस्था के साथ संगम है। यह वैयक्तिक ईश्वर सच्ची पूजा और भक्ति का पात्र है, मनुष्य की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति उत्पत्ती कोइ गर नैतिक दबता नहीं।" ^८ तो फिर सत्ता के दो पक्ष हैं, और इन दो पक्षों के अनुरूप दो दिशाएँ हैं जिनसे सत्ता को देखा जा सकता है। 'सत्य के वैयक्तिकोपरि और वैयक्तिक प्रतिरूप एक ही सत्ता को अभि यत्न करने के चरम और आपत्तिक प्रकार हैं।' ^९

ईश्वर और निरपन्न परस्पर निषेधन अवधारणाएँ नहीं हैं और न वे असम्बद्ध हैं। 'जगत का स्रष्टा, पापक और "यायकता" ईश्वर चरम तत्त्व स पृथक् किसी सत्त्व अथवा दानि का सूचक नहीं। वह मनुष्य की दिशा से निरपेक्ष" ^{१०} है। दोनों ही असीम और दिव्य हैं, समस्त ससीम और सीमित में उच्च हैं। पर जहाँ "निरपन्न अनुभवोपरि निष्पत्ति है ईश्वर विदधीय दिव्य है। कहना चाहिए ईश्वर सत्ता की प्रतिभा उसका आधार है।" ^{११} इस प्रकार राधाकृष्णन मूलभूत प्रश्नों पर गहराचार्य की स्थिति स्वीकार करते हैं पर उनका कट्टरतापूर्वक अनुसरण नहीं करते। वे गहर के सकारात्मक पक्ष से भावित होते हैं और अनुभव करते हैं कि मूलतः वह ठीक है। पर वे यह भी अनुभव करते हैं कि अद्य सम्प्रदाय की—विशेषकर रामानुज की—आलोचना भी संवधा निराधार नहीं है। ^{१२} तत्त्वमीमासीय अथवा गहर सत्य के प्रतिनिधि हैं जो निरपन्न का सत्य है। 'पर रामानुज का मत सत्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। ^{१३} अवश्य ही गहर की दृष्टि सत्ता चरम सत्य की अभि यक्ति नहीं हो सकती।

अपने राधाकृष्णनस मेटाफिजिक्स एण्ड एथिक्स विषय में मूर का

पहूँचे कि आत्मा और ब्रह्म बुद्धि के पर है और उनकी केवल अतः प्रज्ञा के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। पर उन्होंने यह स्पष्ट दर्शन का कष्ट नहीं किया कि यह अनुभव भी बुद्धि व तत्त्वपूर्ण ज्ञान में निहित और पूर्वानुमानित ज्ञान का एक ही रूप है और बुद्धि इस उच्च अनुभूति की अनिवार्य विरोधी नहीं है बल्कि वह उसमें आत्मसात है और उसका द्वारा पूर्ण होती है। ७१

राधाकृष्णन ज्ञान के एक रूप के नाते ही अतः प्रज्ञा को दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। रहस्यात्मक चेतना के लिए अतः प्रज्ञा शब्द का प्रयोग उनके यहाँ विरल है। रहस्यात्मक चेतना के लिए वे 'अखण्ड अनुभूति पदावली' का प्रयोग अधिक प्रसन्न करते हैं। किंतु वस्तुतः द्वार सामान्य प्रयोग में अतः प्रज्ञा शब्द से जुड़ी हुई अस्पष्टता राधाकृष्णन के विवेचन में भी घुस जाती है। वे स्वयं भी इस द्वार में सचेत हैं। वे कहते हैं— 'दुर्भाग्यवश हम धार्मिक प्रतिभा, वाय्वात्मक अतद्विषय नैतिक अंतरात्मा तथा धार्मिक आस्था सभी के लिए एक ही अतः प्रज्ञा व्यवहार करने का राध्य होते हैं। यद्यपि ये विविध संचरण मन की अखण्ड क्रिया को ही सूचित करते हैं, फिर भी यह ज्ञान कुछ क्षेत्रों में ज्ञान की ओर उन्मुख है और कुछ में उपभोग या सृष्टि की ओर।'

अतः प्रज्ञा की न केवल ज्ञान का एक साधन मानना चाहिए बल्कि उस चिन्तन का एक रूप भी समझना चाहिए। अतः प्रज्ञा स्वाधीन नहीं है बल्कि निश्चित रूप से चिन्तन के अधीन है और चिन्तन के स्वरूप में ही निहित है। वह गतिपूर्वक निरंतर चिन्तन के साथ रहती है और ज्ञान के अवधारणापरक स्तर को भेद कर उसके तल में जीवित सत्य तक जा पहुँचती है। ७२ किंतु अतः प्रज्ञा तत्त्वसंगत चिन्तन के साथ असतत हाते हुए भी उससे गुणात्मक रूप में भिन्न है। 'तत्त्वसंगत और अतः प्रज्ञा दोनों प्रकार के ज्ञान का औचित्य है और उनमें अपने-अपने अलग क्षेत्र हैं। दोनों ही उपयोगी हैं और प्रत्येक का अपना विशिष्ट उद्देश्य होता है। तत्त्वसंगत चिन्तन हमारे लिए इस दुनिया की परिस्थितियों का जानना और अपने हित के लिए उन पर नियंत्रण करना सम्भव बनाना है। ठीक से जाने बिना हम सफलतापूर्वक काम नहीं कर सकते। पर यदि हम वस्तुओं को उनकी अद्वितीयता में, उनकी अपरिहाय्य यथार्थता में जानना चाहते हैं तो तत्त्वसंगत चिन्तन से परे जाना आवश्यक है। ७३ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ बल तत्त्वसंगत चिन्तन से परे जान पर है उसका परिष्कार पर नहीं।

करता है। 'माया से यह अभिप्राय नहीं कि ससार एक भ्रम है अथवा सबया अस्तित्वहीन है। ससार अपरिमेय और अपरिमित में भिन्न एक भीमा निधारण है। पर यह सीमा निधारण है ही क्यों? जब तक हम अनुभवसिद्धता के स्तर पर हैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता।' ७४ राधाकृष्णन का दावा है कि दान का सम्पूर्ण इतिहास भारत में तथा यूरोप में 'मृष्टि की समस्या को सुलभान में मानव-मन की असमयता का एक दीर्घ उदाहरण' ७५ रहा है।

इसका अर्थ है कि न केवल निरपेक्ष का स्वरूप अपरिभाष्य है बल्कि अनुभूत जगत से उसका सम्बन्ध भी उतना ही अपरिभाष्य है। 'इस बारे में कि मूल सत्ता जिसमें दिव्य उद्योति अप्रतिहत जलती रहती है किस प्रकार समस्त अनुभूत प्राणिया का श्रोत और उद्गम हो सकती है हम बस इतना ही कह सकते हैं कि यह एक रहस्य है माया है।' ७६ राधाकृष्णन आगे कहते हैं—'इस रहस्य को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करना आवश्यक है।' ७७ हमारी श्रद्धा प्राप्त करने के अलावा यह रहस्य हमारी अचरज की भावना को भी जाग्रत करता है और इस जगत को और भी अधिक रोचक बना देता है। जिन अंगों में राधाकृष्णन माया की कायात्मक यजनाया का विवचन करते हैं, उन पर टगार का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ५

६

ससीम जगत में निरपेक्ष के जगत् के विषय में यह गहरी रहस्य भावना राधाकृष्णन के अतःप्रज्ञा के सिद्धांत में प्रतिनिधित्व होती है। वह कहते हैं—'ससार की तत्त्वनामगति को बुद्धि स्पष्ट देख पाती है पर उसकी रहस्यात्मकता का केवल अतःप्रज्ञा ही ग्रहण कर सकती है।' ७८ यह हमको पान भीमासा के शास्त्र प्रश्न, सत्य के बौद्धिक ज्ञान और उसकी तात्कालिक चेतना के बीच वषट्प की ओर ल जाता है। राधाकृष्णन द्वारा इस विवादपूर्ण प्रश्न का विवचन न केवल व्यापक है बल्कि परम्परा से अतःप्रज्ञा के पक्ष या विपक्ष में ना युक्तियाँ प्रस्तुत की जानी रही हैं उनसे मुख्य रूप में भिन्न है।

अतःप्रज्ञा के विषय में राधाकृष्णन की मुख्य स्थापना यह है कि उसे तत्त्वना का विवरण नहीं मानना चाहिए, और न उसे दार्शनिक प्रयास से विपरीत रहस्यानुभूति में प्रयुक्त ज्ञान का एक उपाय ही समझना चाहिए। अतःप्रज्ञा और तत्त्वना के बीच अधिक सतोपजनक आधार पर सम्बन्ध स्थापित करके, राधाकृष्णन न बहुरूपी अद्वैत चिन्ता के एक गम्भीर दोष को दूर करने का प्रयास किया है। इस बात को आदर्शवाद के ऊपर एक लेखक न हाल में इन गानों में भीतीभाति रखा है—'नकर के अनुयायी बनाती इस निष्पक्ष पर

इसी बात में है कि दशन में तकना पद्धति का प्रयोग अधिक व्यापक रीति में करने की क्षमता है। दशन की रीति भी ठीक विज्ञान की रीति ही है। पर दशन समस्त मानव अनुभव का प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है, केवल यात्रिकी विज्ञान द्वारा प्राप्त स्वारात्मक तथ्यों के प्रति ही नहीं।^{५८} इस प्रकार ही विज्ञान का आधार तत्त्व दशन के प्रश्न बनते हैं।^{५९} बुद्धि “जो कुछ हम चाहते हैं वह सब हम नहीं देती, केवल इसी कारण”^{६०} अविवक्षणीय नहीं सिद्ध हो जाती।

राधाकृष्णन तब को सृष्टि बनाने और अन्त प्रज्ञा के नाम पर दान की नियमन और स्पष्टीकरण की वजह से आवेग और भावना का विषय घोषित करने के छतरे के विरुद्ध बार बार चेतावनी देते हैं। वे सांस्कृतिक अनुभव के पगम्बरों को स्मरण दिलाते हैं— दशन तत्कालीन आवश्यकताओं से उत्पन्न होता है और सद्वाचिक सत्य उसका लक्ष्य है।^{६१} दान तत्कालीन व्याख्या से कम में काम नहीं चला सकता, यद्यपि वह उससे अधिक अवश्य चाहता है। अन्त प्रज्ञा को यदि बुद्धि का पर्याप्त सहारा प्राप्त न हो, तो वह “आत्मसंतुष्ट प्राचीनपरकता में जा गिरती है।”^{६२} यदि अन्त प्रज्ञा के सार को गहरा करना है तो उसे बौद्धिक बनाना आवश्यक है। अन्त प्रज्ञा का प्रयोग ‘ऐसे सिद्धान्तों के बचाव के लिए, जो बौद्धिक आधार पर उचित नहीं ठहराए जाते या नहीं ठहराए जा सकते’^{६३} कभी नहीं करना चाहिए।

राधाकृष्णन हम याद दिलाते हैं कि प्राचीन भारतीय चिन्तक अन्त-प्रज्ञा पर अत्यधिक निर्भरता के छतरी को पहचानते हैं। वे जानते हैं कि योग की भाँति अन्त प्रज्ञा के लिए भी बहुत तयारी की आवश्यकता होती है और उसका तभी भरोसा किया जा सकता है जब सत्य का अवधि उससे उपयोग के लिए सुमज्जित हो। वह न केवल निश्चित बौद्धिक विकास की बल्कि पर्याप्त नैतिक तैयारी की भी, अपेक्षा रखती है जिसके बिना अन्त प्रज्ञात्मक विधि से सर्वोच्च फल प्राप्त नहीं हो सकता।^{६४} राधाकृष्णन प्राचीन का इस विचार से सहमत हैं कि सच्ची अन्त प्रज्ञा में पहले मन को वास्तव और चिन्ता से मुक्त होना चाहिए। ‘परम आंतरिक शुद्धता और आत्मनिष्पन्न’^{६५} होना चाहिए और आत्मा को पहले अद्वय सत्ताओं से सामंजस्यपूर्ण बनाना^{६६} चाहिए। अन्त प्रज्ञा अनवरत सज्जनात्मक प्रयत्न की माँग करती है और प्रायः ‘अध्ययन और विस्मरण की लम्बी और बटिन प्रक्रिया का परिणाम’^{६७} होती है। अनिर्वाचित करपना गति का नाम अन्त प्रज्ञा नहीं। “जो बर्तना पवित्र अन्त प्रज्ञा द्वारा अनुप्राणित नहीं जो बर्तना गति निरा दिवा

अतः प्रज्ञा तथा ज्ञान के अर्थ रूपों के बीच राधाकृष्णन कोई बड़ा भ्रमभय नहीं देखते। 'मनुष्य का ज्ञान मोट तौर पर तीन प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष, तत्कालिक और अन्तःप्रज्ञात्मक, मानस अथवा इन्द्रिय मन, विज्ञान अथवा तत्त्वबुद्धि, और आनन्द जिसे वस्तुमान उद्देश्यों के लिए आध्यात्मिक अतः प्रज्ञा कह सकते हैं, तीनों ही मानव चेतना के अंग हैं।' ५३ जो लोग अन्तःप्रज्ञा को ज्ञान के अर्थ रूप से श्रेष्ठ बताते हैं वे इस भ्रातः धारणा से प्रारम्भ करते हैं कि मन पृथक् 'समताओं का पुञ्ज मात्र है। पर 'मानव मन क्षणिक रूप में कार्य नहीं करता। यह मानना आवश्यक नहीं कि इन्द्रिया के स्तर पर अतः प्रज्ञा के लिए कोई कार्य नहीं अथवा अतः प्रज्ञा के स्तर पर बुद्धि के लिए कोई कार्य नहीं। अतः प्रज्ञा को अव्यक्त अन्तर्दृष्टि कहने में इंगित पड़ी है कि उसमें सम्पूर्ण मन सक्रिय होता है।' ५४

ज्ञान प्रक्रिया की समग्रता पर यह बल राधाकृष्णन के अतः प्रज्ञा के सिद्धान्त को जेस्टास्ट मनोविज्ञान के दार्शनिक आधार के बहुत समीप ले आता है। बर्दीमर और वापका की भाँति राधाकृष्णन भी इन्द्रिय-बोध के कार्य के—इन्द्रिय बोध का व्यापकतम अर्थ में लें तो—सब-समावेशी स्वरूप पर आप्रह्व करत हैं। वे कहते हैं—'चित्तन के समस्त गतिशील कार्य, चाहे वे गतगज के खेल में हों चाहे किसी गणित की समस्या को लेकर समग्र परिस्थिति के अतः प्रज्ञात्मक बोध द्वारा नियंत्रित होते हैं।' ५५ यह जीवन की साधारण प्रक्रियाओं में निहित सरल चित्तन में लयाकर तत्कालीन युक्ति निष्कर्ष की जटिल पद्धतियों तक, सभी स्तरों के बारे में सही है। प्रत्येक तत्कालीन प्रमाण में बौद्धिक समग्रता का बाध, विभिन्न चरणों द्वारा पुष्ट सम्पूर्णता की अन्तः प्रज्ञा निहित है। न केवल मृज्जनात्मक अन्तर्दृष्टि बल्कि किसी वस्तु की साधारण समग्र तक में यह प्रक्रिया विद्यमान रहती है। ५६ इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि 'कोई भी भ्रष्ट दृश्य अवलोकित तथ्य सामग्री, तत्कालीन चित्तन और अतः प्रज्ञात्मक अन्तर्दृष्टि को ध्यान में रखे। इन सबका व्यवस्थित ढंग से संप्रतिष्ठ करना आवश्यक है।' ५७

इस प्रकार यह मानते हुए कि समस्त चित्तन उसमें निहित समग्रता के बोध के कारण अतः प्रज्ञा से विद्ध होता है राधाकृष्णन तत्काल को भी सावधानी से उसका उचित ध्यान देते हैं। मानो इस तथ्य पर विशेष बल देते हुए कि उनमें लिए तत्काल और अतः प्रज्ञा में कोई विरोध नहीं है व शायद 'तत्कालीन अतः प्रज्ञा' शब्दावली का प्रयोग करते हैं। दृश्य में तत्काल का 'साधारणतम' स्थान स्थापित करना आवश्यक है। विज्ञान से दान की श्रेष्ठता

होती है और जिसके बीच वह अवस्मात् घटित होती है उच्चतर" १० ११ है। बुद्धि से उसका सम्बन्ध वैसा है जसा 'सम्पूर्ण का एक अंग से चिंतन के सृजनात्मक स्थात का सञ्चित कोटि से' १२ होता है। तब और भाषा 'इस प्रकार के ज्ञान का निम्नतर रूप, लघुतर रूप' १३ है। सभी सभी राधाकृष्णन यह भी कहते हैं कि अन्तःप्रज्ञात्मक ज्ञान 'प्रयासहीन और स्वतःस्फूर्त' १४ होता है। यह उनको इस पहले उद्धृत राय से विपरीत लग सकता है कि सभी अन्तःप्रज्ञा पहली तैयारी की अपेक्षा रखती है और कुछ कठोर पूर्व परिस्थितियों पर निर्भर रहती है। पर यह विरोध ऊपरी ही है। अन्तःप्रज्ञा को ज्ञान के प्रभावी साधन के रूप में प्रयोग करने की क्षमता विकसित करने के लिए, उच्चकोटि के बौद्धिक मानसिक और नैतिक भी, उपकरण आवश्यक होते हैं। पर इस साधन के प्रयोग की वास्तविक प्रक्रिया में सहजता और सरलता होती है जिनका ज्ञान के अन्तःप्रज्ञा में अभाव है। 'सत्ता की निश्चयात्मकता विचित्र और सरल होती है।' १५ और जिस प्रकार किसी महाकवि के गहनतम भाव सभी-कभी अपूर्व सादृश्यों से गद्यों द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार कोई-कोई दार्शनिक भी सभी-कभी गुरतर आध्यात्मिक उपलब्धियों सरल और प्रयासहीन अन्तःप्रज्ञा द्वारा घोषित कर पाता है। 'हम आविष्कार अन्तःप्रज्ञा द्वारा करते हैं, चाहे उसको प्रमाणित भले ही तब द्वारा करें।' १६ /

७

अन्तःप्रज्ञा के सिद्धान्त को ज्ञानमीमांसा का एक आवश्यक मध्यमतर मानकर, अब हम राधाकृष्णन की आदर्शवादी विश्वदृष्टि की आर लौटें, और फिर आगे बढ़कर उनकी नीतिशास्त्र विषयक भाष्यताभा पर विचार करें। उनके चिंतन का कठार व्यवस्था प्रेमी विवक्षित उनकी तत्त्वमीमांसा से सीधे उनके नीतिशास्त्र तक जाना चाहेगा, क्योंकि हमारे युग के अन्तःप्रज्ञा दार्शनिक न तत्त्वमीमांसा के ऊपर नीतिशास्त्र की निर्भरता पर इतना प्रबल आग्रह नहीं किया है जितना राधाकृष्णन ने। ये कहते हैं—“किसी भी नैतिक सिद्धांत का आधार तत्त्वमीमांसा में मानव आचरण और चरम सत्ता के बीच सम्बन्ध की दार्शनिक अवधारणा में होना आवश्यक है। चरम सत्ता का हम जसा समझते हैं वसा ही हम आचरण करते हैं। दृष्टि और क्रम साथ साथ चलते हैं।” १७

तत्त्वमीमांसा के ऊपर नीतिशास्त्र की निर्भरता की व्याख्या राधाकृष्णन मूल्य के आधार पर करते हैं। नैतिक आत्मा का आधार मूल्य में है ठीक इसी कारण यह सत्ता के स्वरूप के विषय में उदासीन नहीं हो सकता जो समस्त

स्वप्न, ख्याली पुलाव या अक्लबाजी है, वह हम आबिस्मिक स्थिति को छोड़कर कभी सत्य तक नहीं पहुँचा सकती।^{१०८}

किन्तु इन सब प्रतिबन्धों को लगाने और चेतावनी देने के बाद, यह स्पष्ट हो कि राधाकृष्णन के लिए अतः प्रज्ञा अथवा उपायों की तुलना में कई दृष्टियों में ज्ञान का श्रेष्ठतर उपाय है। श्रेष्ठतर विधि आवश्यक रूप से एक मात्र विधि नहीं होनी, और ऐसे अवसर हो सकते हैं जब "कुल मिलाकर सब ध्येय नहीं जान सारी विधि सबसा उपयुक्त न हो। ज्ञान के ऐसे भी पक्ष हैं जिनमें अतः प्रज्ञात्मक विधि जानने की प्रक्रिया के गौण स्वरूप के अतिरिक्त अन्य मन्त्रादिवर्गों से लगभग अनुपयोगी होगी। पर ज्ञान के सर्वोच्च स्तरों पर अतः प्रज्ञा में ऐसे लाभ हैं जो इन्द्रियबोध अथवा तकना में उपलब्ध नहीं। वास्तव में वह 'इन्द्रियों के परे के क्षेत्र में इन्द्रिय-बोध के विस्तार'^{१०९} को सम्भव बनाती है वरन् उन "मन्त्रों की चेतावनी, जो न तो देश-काल में स्थित पदार्थ हैं और न चित्त के मन्त्रों की तत्त्व,"^{११०} उत्पन्न करती है।

अतः प्रज्ञा आरम्भनिष्ठ है, अनिष्ठित वैयक्तिक है। इसको एक सीमा माना जा सकता है पर यह याद रखना चाहिए कि चित्त की सूक्ष्मता और प्रसरता वैयक्तिकता से जुड़ी हुई है और यदि वैयक्तिकता न रहे तो कुछ नहीं होता।^{१११} इस तथ्य के कारण कि अतः प्रज्ञा को वैयक्तिक अथवा प्रमाणित नहीं किया जा सकता, और वह असंप्रेषणीय है उसकी सत्यता नहीं मिलती। गहनतम अतः पट्ट वाले लोगों ने उसे स्व सृष्ट्यापक, स्वतः मिद और स्वतः प्रकाशित ^{११२} कहा है। अतः प्रज्ञा की प्रामाणिकता सिद्ध होना तो दूर, वह "गुण बोध समस्त साक्षरता सम्पूर्ण सत्यता"^{११३} प्रस्तुत कर सकती है। अतः प्रज्ञा अव्यपनीय गति से कार्य कर सकती है सच्ची अतः प्रज्ञात्मक अनुभूति में 'सम्पूर्ण मन एक स्पन्दनगीत स्रज में बाँध छलाँग भरता माना जाता है।'^{११४} पर यह भाषा की जा सकती है कि अतः प्रज्ञा की सत्यता का क्या प्रमाण है? राधाकृष्णन का उत्तर है कि उसकी अस्वीकृति असम्भव होना ही उसकी प्रामाणिकता का सबसे बड़ा सबूत है। वे कहते हैं—“अतः प्रज्ञात्मक तत्त्व की सत्यता और उसका प्रमाण कुछ-कुछ वास्तव के प्रापनुभव तत्त्वों के प्रमाण की भाँति है। हम उनको अपने चित्त द्वारा नहीं मिटा सकते। हम उनमें अविश्वास करना बौद्धिक नहीं रह सकता। वे हमारे मन की रचना में ही निहित हैं।”^{११५}

इस अविश्वस्य सत्यता और उसके लाभों को देखते हुए राधाकृष्णन आग्रहपूर्वक कहते हैं कि अतः प्रज्ञा उस तक प्रक्रिया से जिससे वह उत्पन्न

है यद्यपि उसके बिना वह नहीं प्राप्त हो सकता।^{१११०} राधाकृष्णन जन्म मरण के चक्र से मुक्ति के विचार की व्याख्या भी "मात्र नतिक से आध्यात्मिक धर्म तर तक उठने" की उत्कण्ठा के रूप में करते हैं और कहते हैं— "आध्यात्मिक नैतिक का विस्तार मात्र नहीं है। वह सवया नया ही आयाम है जो सनातन वस्तुओं से सम्बद्ध है।"^{११११}

इन वक्तव्यों के बावजूद, यह सोचना भूल होगा कि समग्रतः राधाकृष्णन के दृष्टान्त में नतिक प्रयास का महत्त्व कम माना गया है। इसके विपरीत बार बार जाग्रदवस्था को घेरते हैं—'ब्रह्म की एकता के तत्त्वमीमासीय सत्य में आनुभविक स्तर पर नैतिक अन्तर की प्रामाणिकता किसी प्रकार कम नहीं होती।'^{१११२} व इस विरोधाभास की ओर संकेत करते हैं कि नैतिक जीवन सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए और इस प्रकार स्वयं नतिक प्रक्रिया के अतिश्रमण के लिए अपरिहार्य परिस्थिति है।^{१११३} जिस प्रकार आनुभविक जगत इस सत्य के कारण निपथित नहीं होता कि निरपेक्ष ससीम से परे हो जाता है उसी प्रकार ऐतिहासिक प्रक्रिया भी, जो नतिक आचरण का आधार है, इस सत्य के कारण भिन्न नहीं जाती कि सर्वोच्च आध्यात्मिक अनुभूति में हम उस प्रक्रिया पर लागू होने वाले सदाभ सूत्र से ऊपर उठ जाते हैं।^{१११४}

एक अर्थ में, नतिकता सम्पूर्ण व्यक्तिगत मुक्ति के बाद भी बनी रहती है। मुक्त आत्मा के लक्ष्य के लिए कोई पदार्थ नहीं रहता क्योंकि उसने सत्य कुछ प्राप्त कर लिया है पर फिर भी वह मसार के कल्याण के लिए सन्निध रहता है।^{१११५} बुद्ध इसके उदाहरण हैं जिन्होंने प्रबुद्धता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचने और इच्छा के अन्तिम अवशेषों तक का जीत देने के बाद भी अपनी धर्म मुक्ति को रोककर बालीस वष तक नतिक नियम का पक्ष चालू रखा। बाबर तब मुक्त आत्मा के लिए नतिक बत य की कोई साधकना न मानते हुए भी इस मुक्ति में नतिक गुणा का परित्याग नहीं देखते। 'सम्पूर्णता से नतिकता की नहीं' नीतिपरक व्यक्तिवादिता की मृत्यु होती है।^{१११६}

आनुभविक जगत में अन्ततः हमारा काम वास्तव में इसी जगत् से पृथक् है—नतिकता का महत्त्व पूरी तरह मानने के कारण ही राधाकृष्णन नतिकता और धर्म के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध देते हैं। "बुद्ध तत्त्वमीमासा के धरातल पर नतिकता के साथ ही धर्म भी पीछे हट जाता है, यद्यपि निरपेक्ष व्यक्तिगत ईश्वर और ससीम आत्मा दोनों के परे है। पर व्यावहारिक धरातल पर धर्म और नतिकता दोनों ही यथार्थ हैं और परस्पर सम्बद्ध हैं। प्रगतिशील जीवन के रूप में धर्म की जड़ें सदा ही नतिक नियम में रहती हैं और सर्वोच्च

मूल्य का चरम स्रोत है। 'यह प्रश्न अनिवार्य है कि नैतिक आदर्श निरा स्वप्न है अथवा उसे जगत् का समर्थन प्राप्त है। मनुष्य क्या अधिकार में अकेला ही रह रहा है अथवा कोई ऐसा सर्वोपरि उद्देश्य भी है जो उसकी जादगों का खोज में उसके साथ सहयोग कर रहा है उसकी योजनाओं की चरम पराजय से उस वचान में प्रयत्नशील है? क्या हमारे मूल्य केवल अनुभवजन्य सयोग मात्र हैं अधिक से अधिक मानव मन की मृष्टि मात्र हैं अथवा वे हमारे सामान्य एव अस्तित्व का उत्पादन करते हैं जो मात्र मानवीय से कुछ अधिक है ऐसी आध्यात्मिक सत्ता का उद्गाहर करन हैं जो काल्पिक प्रक्रिया में होने वाली घटनाओं का साथकना का स्रोत है?''^{११३}

किन्तु यदि नैतिकता तत्त्वमीमासा पर निर्भर है और यदि राधाकृष्णन निरपन्न आदर्शवाद का सबसे सन्तोषप्रद तत्त्वमीमासीय सिद्धांत मानन हैं तो क्या वे चरम अर्थ में नैतिकता के मूल्य का अस्वीकार करने के लिए नहीं बाध्य होत? यदि अवयवितक ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, तो क्या हम नैतिक आचरण के प्रदान की मूलभूत साधकता प्रदान कर सकते हैं जो अन्तर्गत ससीम जगत् में रहन वाले सभी प्राणियों में ही सम्बन्धित है? कभी-कभी लगता है कि राधाकृष्णन निरपन्नवाद के बढोर तक की स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि चरम विच्छेदन में नैतिकता के परे जाना ही होगा। नीतिशास्त्र में जीवन के पथकतावादी दृष्टिकोण की पूष कल्पना है। जब हम उसमें पर जान हैं तो नैतिक नियमों के ही परे पहुँच जात हैं।''^{११४} सन और अमन के भेद की जहाँ कायनीलता में हैं। किन्तु कायनीलता ता 'ऐतिहासिक प्रक्रिया की विरोधता है और सम्पूर्णता ऐतिहासिक नहीं है। उसमें कोई अभाव नहीं और उसमें कोई कायनीलता नहीं है। सक्ती।''^{११५}

कभी कभी राधाकृष्णन आध्यात्मिक और नैतिक के बीच अंतर करते हैं और नैतिक आध्यात्मिक का श्रेष्ठतर बताते हैं। आध्यात्मिक धरातल नैतिक धरातल में उच्चतर है। जिस प्रकार जड़ पदार्थ से जीवन प्रकट हुआ जीवन से मन प्रकट हुआ, मन में मूल्यबोध प्रकट हुआ वैसे ही मूल्यबोध में स ईश्वर चेतना प्रकट होती है। मोक्ष नैतिक व्यक्तिमत्ता में आध्यात्मिक सव ध्यापकता तक उत्तम का ही नाम है। वह काल में अनिश्चित प्रगति में स नित्यता में चरम उपलब्धि तक प्रकट होता है।''^{११६} इसका अर्थ है कि नैतिकता की आध्यात्मिक सम्पूर्णता की पूर्वापगा ता माना जा सकता है पर उसका बराबर नहीं माना जा सकता। जान अथवा माया के आवरण के परे स्थ पाना, मनुष्य की आध्यात्मिक नियति है। वह नैतिक उत्तमता में कुछ अधिक

है। क्योंकि आतिरवार सच्चा धर्म क्या है? "वह एक आध्यात्मिक निश्चितता है जो हम शक्ति और सात्वता प्रदान करती है। वह यह विश्वास है कि प्रेम और 'याय जगत के केन्द्र में हैं। वह यह आस्था है कि किनारे की लहरें भले ही टूट जाएँ पर फिर भी जीतता महासागर ही है।" ^{१११} सभी महान् नीतिकारों ने यही विश्वास प्रकट किए हैं यद्यपि विशेष गुणों के, तथा मानव स्वभाव के विभिन्न पक्षों की आवश्यकताओं के मूल्यांकन में उनके बीच व्यापक मतभेद रहा है।

राधाकृष्णन का अपना सुझाव 'सत जीवन के उदार और सहिष्णु मूल्यांकन की ओर है। वैराग्य का माग उह कभी प्रिय नहीं रहा। भगवद्गीता की भांति ही वे आग्रह करते हैं कि "हम ससार के त्याग की नहीं मन की तन स्थिता की आवश्यकता है।" ^{११२} सच्ची तटस्थता "पथ" वह के साथ अपने आपको एकाकार करने की अस्वीकृति में स्वायत्त हितों के अघघात लक्ष्य के परित्याग में है। ^{११३} अतिशय वैराग्य, जो आत्मपीडन कठोर ग्रहण तथा अथ उग्र आत्माओं में प्रकट होता है जीवन प्रक्रिया के विरुद्ध मुद्र धोपणा के समान है। "हमें मानव जाति के विनाश का खतरा उठाकर आत्मा का बचान का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।" ^{११४}

दृष्टिवादी नीति सहिताओं का कट्टरतापूर्वक मानन से सदगुणों में वृद्धि नहीं हो सकती। दृष्टिवादी के जड़ हो जान पर उनके विरुद्ध विद्रोह एक नैतिक आवश्यकता बन जाता है। धृष्ट और सुकरात का उल्लेख करते हुए राधाकृष्णन हमें याद दिलाते हैं कि यद्यपि नैतिकता अनुवर्तिता की मांग करती है, फिर भी सच्ची नैतिक प्रगति प्रायः चरम अनुवर्तियों के साथ पर निर्भर रही है। ^{११५} आदर्शों का परीक्षण मानव जाति के वास्तविक अनुभव में करना होता है और उह हर युग में समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं का ध्यान में रखकर ही काम रूप देता होता है। अनुभव हमें बताता है कि कुछ आदर्शों को 'मावहारिक रूप में कार्यान्वित करने में असाधारण व्यक्तियों को छोड़कर याकी सबको कुछ न कुछ समझौता करना ही पड़ता है। हम जहाजी के समान हैं जिनका बरतगाह पर पहुँचने की सम्भावना मौसम और हवाओं से थोड़ा सा समझौता करने पर ही अधिक है।" ^{११६} यह सच है कि हम दार्शनिक दृष्टि में उगासीन ^{११७} नहीं हो सकते और यदि मूलभूत नैतिक मूल्य दीय पर लगे हों तो हम तटस्थ नहीं रह सकते। पर हमारा दृष्टिकोण लचीला होना चाहिए और हम मनुष्य के कार्यों को बहुत कठोर होकर नहीं जाँचना चाहिए।

नैतिकता सदा मनुष्या के मन का जगत में परिव्याप्त ईश्वरत्व की ओर प्रेरित करती रही है। 'यदि नैतिक चिन्तन गहन हो तो वह नैतिकता की विश्व-व्यापी उद्देश्य प्रदान करेगा। नैतिक चेतना में आदर्शों की सत्यता में विश्वास होना आवश्यक है। यदि आदर्शों की सत्यता घम है, तो नैतिक मानववाद वमहर्ष घम के अतिरिक्त और कुछ नहीं।' १२४

राधाकृष्णन ने नीतिशास्त्र पर टिप्पणी करते हुए जोड़ लिखे हैं—
 "नैतिक प्रश्न पर अपने प्रत्येक कथन में वे नीतिशास्त्र और घम के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध को मानकर ही चलते हैं—घातक में उसकी मूलभूत मायता के रूप में जगत के आध्यात्मिक विचार को, मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप का और मनुष्य के भीतर अवस्थित ईश्वर की अवधारणा को मानकर चलते हैं।" १२५ जगत के समस्त रूप में राधाकृष्णन की आस्था जिसका पहले ही उल्लेख हो चुका है, नतिरता और घम की मूलभूत एकता पर उनके आग्रह में प्रतिबिम्बित होती है। जीवन एक है और उसमें धार्मिक और घम निरपेक्ष के बीच कोई भेद नहीं। घम, अथ और काम साथ-साथ ही चलते हैं। दैनिक जीवन के माधारण काम में वे सच्चे अथ में परमेश्वर की सेवा ही हैं।" १२६ सभी उच्चतर घमों में "अनुभवातीत में विश्वास और प्राकृतिक में काम दोनों ही घनिष्ठता और पारस्परिक प्रभावपूवक एक साथ बड़े हैं।" १२७

राधाकृष्णन विश्वास करते हैं कि अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में हिंदू घम में नैतिकता और घम के बीच इस 'घनिष्ठता और पारस्परिक प्रभाव' का सूक्ष्म बोध प्रकट होता है। घम शब्द नैतिक सच्चाई और धार्मिक सम्पूर्णता दोनों का सूचक है। घम मूलतः घम और नैतिकता का समन्वय है। १२८ हिंदू चिन्तन में घम उस सद्गुण के अतिरिक्त और कुछ नहीं जो 'वस्तुओं के सत्य के अनुरूप होन में निहित है। नैतिक बुराई उस सत्य के साथ सामंजस्यहीनता है जो ससार को घेरे हुए है और नियंत्रित करता है।" १२९ सद्गुण और धार्मिक मूल्य की यह व्यापक व्याख्या घम की अवधारणा को बढ़ाती है। यद्यपि घम निरपेक्ष है किंतु उसमें कोई निरपेक्ष और कालहीन सार नहीं। नैतिकता का एकमात्र शाश्वत तत्त्व है मनुष्य की श्रेष्ठतर की जायाना। १३०

नीतिशास्त्र के विशिष्ट प्रश्न पर राधाकृष्णन का मतमत उनकी मूलभूत आदर्शवादी विश्वदृष्टि से और उनके इस विश्वास से कि 'सच्चे घम' और सच्ची नैतिकता' में कोई अंतर नहीं, स्वाभाविक रूप में निरूप्यता

तो अभी बनना ही बाकी है। "हम यह नहीं मान सकते कि हर चीज शुरू होने के पहले ही खत्म हो चुकी है और अन्तिम गिन वही निणय पड़ा जाएगा जो पहले ही दिन लिख दिया गया था।" १४१ साथ ही वे कम की परंपरागत अवधारणा को भी स्वीकार करते हैं और स्वाधीनता के विचार और कम निद्रांत के बीच कोई मूलभूत विरोध नहीं देखते। वे कहते हैं कि 'कम' की व्याख्या में उस कानून का ही एक व्यापक प्रयास मानना चाहिए, और कानून को केवल अराजकतावादी ही अस्वीकार करते हैं। स्वाधीनतावादी नहीं। इस अर्थ में कम नियम अर्थव्यवस्था का एक माय माय है। वह एक परिस्थिति है निमित्त नहीं। १४२

राधाकृष्णन स्वतंत्र इच्छा शक्ति के विषय में अपने विचारों को एक बड़े व्यंजनापूर्ण रूप में द्वारा समझाते हैं। जीवन गेम के खेल की भांति है। खेल के ताश हम कोई दूसरा देता है उन्हें हम स्वयं नहीं चुनते। वे पिछले कम के अनुसार हैं पर हम मनवाहे हाथ बोलने को और तांग चलने को स्वतंत्र है। हमारे ऊपर केवल खेल के नियमों का ही बंधन है। हम खेल शुरू होते समय जितने अधिक स्वतंत्र होने हैं उतने बाद को नहीं रहते जब खेल आगे चलने से हमारा चुनाव सीमित होता जाता है। पर कुछ न कुछ चुनाव की सम्भावना अंत तक बनी रहती है। अच्छा खिलाड़ी उन सम्भावनाओं को देखता है जिन्हें बच्चा खिलाड़ी नहीं देख पाता। खिलाड़ी जितना अधिक चतुर होता है उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ उसे दीखती हैं। अच्छे तांग भी निपुणताहीन खेल के कारण खोपट हो सकते हैं, और खेल के बुरे होने का कारण केवल भाग्य या खोप होना आवश्यक नहीं। भले ही हम ताश के फेंकने के ढंग को न पसंद करें पर खेल हमें अच्छा लगता है और हम खेलना चाहते हैं। १४३

८

राधाकृष्णन द्वारा पाश्चात्य और पौराणिक चिंतन के तुलनात्मक अध्ययन की ओर एक आइडियलिस्ट थ्यू आफ लाइफ के प्रकाशन के बाद में बहुत ध्यान गया। एक समय इस क्षेत्र में उनके कार्य का बहुत सारा ध्यान विशेषकर भारत में गलत कारणों से प्रसंगा किया करते थे। वे उन्हें हिंदू सभ्यता का समयन समझते थे उन्हें ऐसा विद्वान समझते थे जिन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि भारतीय दान में वह सब कुछ तथा और भी बहुत पर ही मौजूद है जो पश्चिम की दान समझा जाता है, जिसने दिखा दिया है कि दावर के बदला में सभी राज्य अपने घर और गांव के रूप में मौजूद हैं। पर राधाकृष्णन का दान और धर्म में तुलनात्मक पद्धति या चमत्कारिक प्रयोग ऐसे किसी उद्देश्य

गांधी से गहरा प्रभावित होने के कारण राधाकृष्णन अहिंसा को— जो प्रेम का ही एक पक्ष है—नतिक जीवन की सबसे व्यापक और सावभौमिक कसौटी मानते हैं। जब तक हमारी दृष्टि प्रेम से सिक्त नहीं होती तब तक सत्य और अमर्य असूत धारणाएँ मात्र हैं। अफ़ग़ानून और स्पिनोजा की नीति व भी आग्रह करते हैं कि हम तब तक सत नहीं हो सकें जब तक हम 'उत्तमता से प्रेम' ^{१३८} नहीं करने लगते। क्षमा, त्याग, सहिष्णुता, शान्ति, प्रियता, धर्म आदि सभी एक ही प्रेम-तत्त्व के विभिन्न रूप मात्र हैं। किंतु गांधी सहित, राधाकृष्णन यह मानते हैं कि इस तत्त्व का जीवन की गोभा और सौष्ठव से सामंजस्य होना चाहिए। व तपस्या का सौंदर्य देने तो है पर उसको उतना भीरव नहीं देते जितना गांधी दत्त हैं। मुसस्मरिता, मुख, गिष्टता, सन्तुलन का प्रेम और सच्चाई के साथ समन्वय हाना आवश्यक है। ^{१३९} जीवन को अधिक मध्य बनाने की प्रक्रिया में व सब प्रयास भी शामिल हान चाहिए जिनका हृदय उसे अधिक समृद्ध, अधिक सम्पूर्ण, अधिक आनन्दपूर्ण और निश्चित अधिक शांतिपूर्ण और गरिमासम्पन्न बनाना है। भौतिक सुविधाओं का उपहाम करना आवश्यक नहीं और सम्यता के पक्ष का जितना विज्ञान और औद्योगिकी द्वारा प्रस्तुत फल भी शामिल है आभार पूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

सर्वोपरि, सन जीवन स्वतंत्रता का जीवन है। जहाँ व्यक्ति का अपन कार्यों पर कोई अधिकार न हो वहाँ मले बुर का कोई प्रदत्त नहीं उठता। किसी का जबरदस्ती नैतिक नहीं बनाया जा सकता। विच्छेद दिना राधाकृष्णन कई—गिना मन्वधी, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक—मदमों में स्वतंत्रता की परम आवश्यकता की बात उठाते रहते हैं। ^{१४०} उनके सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि में दमन और विचार नियंत्रण के लिए कोई स्थान नहीं वह अपाचार चाह किसी राष्ट्र का हा किसी जाति का हा, किसी धर्म या धन का हा, किसी विचारधारा या धर्म का हो। आधुनिक पाश्चात्य सम्यता से उनकी जो भा गिरायें हा व लोकतंत्र समानता, राष्ट्रवाद और मार्क्स तिक स्वायत्तता का स्वतंत्रता के हित में, और अन्ततः नतिक प्रगति के हित में यूरोप का महान् योगदान मानते हैं।

किंतु स्वतंत्र इच्छा शक्ति के सामाजिक दानिक प्रश्न पर राधाकृष्णन की स्थिति कुछ अधिक सावधानी की है। व इच्छा शक्ति की स्वतंत्रता को नैतिकता और धर्म दोनों का आधार तत्त्व मानते हैं। अथ निर्व्ययितक बाध्यता के आधार पर आदर्शों और मन्था की दुनिया नहीं बनाई जा सकती। भविष्य

गतिशीलता का प्रमाण है। 'अपने महान युग में हिन्दू सभ्यता न समुद्रों का पार करके उपनिवेशों को बसाकर, ससार को सिंहाकर और उससे सींचकर भी अपनी जाति की सक्रियता का परिचय दिया था।' १४८

पर इन सब बातों से इस मंचार्द में अंतर नहीं पड़ता कि भारतीय चिंतन अपने पिछले स्तर से गिर चुका है और ऋद्धि तथा विचार मकीणता ने हमारे विचारों के साथ मनमानी की है। "हिन्दू धर्म अब कितना कम जीवन्त है। जहाँ कभी जीवन की धारा उमड़ती थी वहाँ अब जड़ता का राज है। हम भटक रहे हैं, प्राणवानता का अभाव है आध्यात्मिक न माहौल है।" १४९ हमारे मन अब वैसे माहसिस नहीं रहे हम नए विचारों के सम्पर्क से कतराते हैं। 'गता है जैसे हम अपने आपसे डरते हैं और आत्मरक्षा के लिए अपने धर्म के छाल से चिपके रहते हैं। जिस आवरण में हम जीवन का बचा रचना चाहते हैं, वह उसके विस्तार को रोकता है।' १५० चिंतन की यह प्रभावहीनता सामाजिक विधान में भी प्रतिबिम्बित है। जाति व्यवस्था "पतित हाकर पीड़न और अमहिषणुता के साधन का रूप ले चुकी है।" १५१ वह असमानता को बनाए रखता है और पारस्परिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति का यन्त्र बना देती है।

इसलिए भारत को अपनी उपरान्वेषों के प्रति अधिक सतुलित और आलोचनात्मक रखा अपनाना चाहिए। प्राचीन लोग अपनी विपद् दुनिया में रहते थे। हम उस दुनिया को समझना चाहिए—दुष्का के भाव से नहीं, पर विचारहीन प्रणाम के भाव से भी नहीं। राष्ट्रावृष्णन ध्येय के साथ कहना है—

अपने आध्यात्मिक पूर्वजों का हमारे ऊपर ऋण यह है कि कम से कम हम उनका अध्ययन तो करें। १५२ कितनी ही बार हम 'परम्पराओं की निरंतरता' के नाम पर अधम्बीकृति और श्रद्धा के नाम पर अटलता की मायता देते हैं।

विभीषण पूर्वजों युग में धर्मशास्त्र हमारे युग की समस्याओं का समाधान नहीं कर सका। भारतीय सभ्यता के महान प्रतिनिधि गतिशील और साहसिक व्यक्ति थे। यदि इस निरंतर गतिशील दुनिया में हम एक ही स्थान पर प्रतीक्षा करने हुए चुपचाप बैठे और प्राचीन ऋषियों ही मान लें, तो हम उन लोगों की भावना के प्रति बफादार नहीं हो सकते। हम मूरज का हिन्दुस्तान के मदानों में घड़े रहने का आदेश नहीं दे सकते। १५३

इसके बावजूद राष्ट्रावृष्णन मानते हैं कि पूर्व के, विचारों के भारत के, धर्म के का बहुत कुछ है। 'आज भारतीय धर्मोपा न केवल भारतीय राष्ट्र के पुनर्जीवन के लिए, बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के पुनर्जागरण के लिए आवश्यक

से प्रेरित न था। शीघ्र ही यह पहचान लिया गया कि उनका उद्देश्य प्रत्यक्ष परम्परा के समग्र तत्त्वों को अस्वीकार करना था जिससे उनके बीच परम्परा सम्बन्ध हो सके, उनका बाय पूर्व और पश्चिम के बीच एक 'सम्यक् अधिकारी' का है, एक 'दागनिब दुमाग्रिब' का और भाषांतरकार का है जिससे प्रयत्न से प्रत्यक्ष योग्य दूसरे की भाषा समझ सके, ऐश पुल निमाता का है या दा राज्या के बीच बौद्धिक वाणिज्य का आगमन बना द।

भारतीय और वास्तव्य चिन्तन के उनके विचित्र पर अलग से विचार करना सुविधाजनक होगा। जब राधाकृष्णन ने भारतीय दान पर लिखना शुरू किया, उस समय भारतीय विद्वानों में दो अनिवार्य प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं। कुछ लोग तो वे थे जो एक 'सांस्कृतिक हीनता ग्रथि' से पाहित थे और अपनी दागनिब परम्परा की समृद्धि देखने में असमर्थ थे। इस विपरीत कुछ पुनरुत्थानवादी थे जो प्राचीन भारत की विवर्णन प्रशंसा करते थे और पश्चिम के प्रति नकारात्मक रवैया अपनाते थे। राधाकृष्णन का उद्देश्य इन दोनों की भ्रम सुधारना था।

उनका भारतीय चिन्तन का समर्थन उत्कट प्रतीतिकारी और सुप्रमाणित था। वे भारतीय चिन्तन की महिष्मृतापूर्ण और आत्मसातकारी भावना की प्रशंसा करते हैं। "हिंदू धर्म न किसी अटल पथ में बद्ध आस्था के बजाय व्यापक उदारता का रसान विकसित किया। बहुत से मत मतान्तर का मानन वाले अनेक सम्प्रदाय हिंदू धर्म के अन्तर्गत हैं। हिंदू धर्म कुछ धर्मों की इस विविध मनाग्रन्थि से पूर्णतः मुक्त है कि मुक्ति के लिए किसी विशेष धार्मिक तत्त्वमीमाणा की स्वीकृति आवश्यक है और उसको स्वीकार न करना जयय पाप है।" वे कहते हैं कि हिंदू धर्म द्वारा बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्म के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों का आत्मसात् करने की क्षमता उसकी निहित गति का सूचित करती है।

राधाकृष्णन दंगति हैं कि कुछ पाश्चात्य शैलियों का यह विचार किन्तु सतही है कि भारतीय चिन्तन अपने स्वभाव से ही स्थिर आत्मसन्तुष्ट और रुढ़िवादी है। वे कहते हैं कि धर्म और दशन दोनों ने भारतीय परम्परा बना ही बुनियादी मूल्या की निरंतरता बनाए रखने के साथ-साथ परिवर्तन और अनुयोजन के लिए पर्याप्त अवकाश छोड़ने की रहा है। "परम्परा, न केवल जीवन के माध्यम से धार्मिक प्रगति की द्वन्द्वात्मकता परिवर्तन की गुंजायमान रखकर हिंदू धर्म की रमा में सहायक होती है।" भारतीय दान का सुदूर-पूर्व और पश्चिम दोनों में ही दूरव्यापी प्रभाव उसका मान्यता और

विश्लेषणात्मक बुद्धि का अत्यधिक सहारा लेने लगा है। इस रूझान को संश्लेषणात्मक अवष्टुतामूलक रूझान में सम्पुष्ट किया जाना चाहिए और इसके लिए तकनीक का अन्त प्रज्ञा के साथ सहयोगपूर्वक कार्य करना चाहिए।^{१४७}

इन दोनों बातों में भारतीय चिन्तन उस सन्तुलन को फिर से स्थापित करने में सहायक हो सकता है जो यूरोपीय मानस को चुका लगता है। राधाकृष्णन यह दावा नहीं करते कि आदसवाद या अन्त प्रज्ञावाद पर भारत का ऐसा त अधिकार है। पर वे अनुभव करते हैं कि कुछ मिलाकर तकनीकादी और उपयोगितावादी प्रवृत्तियाँ पश्चिम में अधिक पूर्णता से विकसित हुई हैं जबकि भारत में अवष्टुतामूलक और आध्यात्मिक रूझान ही सदा प्रधान रहा है। प्रत्येक परम्परा दूसरी से कुछ न कुछ सीख सकती है। यह परस्पर सीखने की प्रक्रिया अनजाने ही सदा चलती रही है। रचनात्मक दान का कर्तव्य आज यही है कि इस प्रक्रिया को एक नई मानव व्यवस्था की ओर उन्मुख और पुष्ट करने के लिए अधिप सचेत प्रयत्न करे।

ऐसा प्रयत्न पहले ही हो रहा है। “विचारा और अन्तर्दृष्टियाँ के पारस्परिक उन्नीकरण द्वारा जिसके पीछे शांतिविद्या की जातीय और सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं मनुष्यों के विचारा के गहरे तान बाने में महान एकीकरण घटित हो रहा है। दूसरा के दृष्टिकोण का आदर, दूसरी सृष्टियों की निधियों की प्रशंसा, एवं दूसरे के निस्वाय उद्देश्यों में विश्वास में वृद्धि हो रही है।^{१४८} पिछली दो सतावियों में पूर्व ने पश्चिम से बहुत कुछ सीखा है। अब पश्चिम भी अपनी चेतना में विचारा आकृतियों और रूपनामा के सम्पूर्ण नए ससार के आकस्मिक प्रवेश के कारण एक पुनर्जागरण में गुजर रहा है। जैसे पन्द्रहवीं शताब्दी में उमरी चेतना यूनान और रोम की प्राचीन सभ्यता के उद्घाटन से विस्तृत हुई थी, उसी तरह आज एशिया की, जिससे भारत भी जुड़ा है नई विरासत के द्वारा आत्मा में आकस्मिक विस्तार हो रहा है।^{१४९}

मनुष्य की मानव प्रवीणता के द्वारा दुनिया के विभिन्न भाग पहले ही पास आ चुके हैं। इस एकता को आध्यात्मिक आधार देना है। हमारी पीढ़ी का परम कर्तव्य है बढ़ती हुई विश्व चेतना को एक आत्मा प्रदान करना, विश्वात्मा की इस मृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक आदर्श और संस्थाएँ विकसित करना।^{१५०} यह कर्तव्य जितना कठिन जान पड़ता है उतना ही नहीं। हम आधुनिक ससार ने सभ्यों और विपन्नताओं से भविष्य में अपनी आत्मा की विचलित न होना देना चाहिए। “हमारे युग की प्रमुखा

है।^{११५} यह बात बहुत आग्रहपूर्वक लग सकती है, पर पश्चिम सभ्यता को जिस गहरा मुकट न भेर लिया है उसके सदन में यह उचित ही है। सत्ता-विधा तक मानवता का नृत्न करने के बाद आज यूरोपीय चिन्तन दुविधा में पड़ा लगता है। अस्तित्व की भावना व्यापक है और पश्चिम के बहुत-से महापुरुषों द्वारा अभिव्यक्त हुई है।^{११६} विज्ञान द्वारा लिखे गये आचार्य बार-बार टूटता रहते हैं। कला, साहित्य और दान के प्रेरणा-स्रोत सूखते जाते हैं। मृत्तन का स्थान अति विनीतकरण ने ले लिया है। ससार को यूरोप के सवश्रेष्ठ उपहार, लोकतन्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय का रूप प्राप्त हो रहा है। यद्यपि यह धारणा अनर्हीन होती कि 'सन्देश' के लिए भारत की ओर मुड़ते ही पश्चिम का रोग दूर हो जाएगा फिर भी यह मानना पड़ेगा कि कई दृष्टियों से हमारा यहाँ से पूर्व में पुष्ट होने वाली परम्पराओं में उनका कुछ निदान गायब मिलेगा।

विज्ञान और औद्योगिकी के क्षेत्र में यूरोप की उपलब्धियाँ का राधाकृष्णन पूरी मान्यता देते हैं। विज्ञान ने सावभौमिकता का भावना का पोषण किया है, मानव-मन को बहुत से अधविचारों से और मानव-शरीर को बहुत सी अज्ञानता और मुकटों से मुक्त किया है। उसने धन दान से विश्व की एकता पर बल दिया है और दान और धन के काम का सहारा दिया है। हमने मानव जाति की सर्वांगीण प्रगति के लिए परिवेश के नृत्न-आपूर्वक उपयोग के अमूल्य उपाय मुद्राएँ हैं। पर इन सबके साथ ही उसके कारण जीवन के प्रति यात्रिकतापरक दृष्टिकोण भी बढ़ा है, और राधाकृष्णन इस दृष्टिकोण में ही पश्चिम के मुकट की जड़ें देखते हैं।

यात्रिकतापरक दृष्टिकोण का प्रकार यह होता है। सबसे पहला तो उसके कारण सबसे बाह्य और अस्थायी मूल्य की वस्तुओं में अत्यधिक उल्लास होने लगता है। उद्योगिता मानदण्ड बन जाती है और विनियमिता को सफलता मान लिया जाता है। सुस्पष्ट मानव मूल्य पीछे धकेल दिए जाते हैं। 'हम आकाश में पंखों की तरह उड़ना और महासागर में मछली की तरह तैरना तो सीखते हैं पर धरती पर मनुष्य की जाति चमत्कार भूल जा रहे हैं।^{११७} मनुष्यों का 'पदार्थ' बना दिया गया है और वह अत्यन्त आध्यात्मिक आधार से बँट गए हैं। वे आत्मा का दुनियाँ में प्रवास या विस्थापित व्यक्ति बनने जा रहे हैं। दूसरे यात्रिकतापरक दृष्टिकोण के फलस्वरूप मनुष्यों के प्रति विलेपनात्मक स्वभाव का महत्व बढ़ा चढ़ाकर आँका जाने लगा है। राधाकृष्णन को निवारण है कि जब से दकात में अपना मूल स्थापित किया तब से यूरोपीय चिन्तन

- १५ १९३२ में प्रकाशित ।
- १६ १९३३ में प्रकाशित ।
- १७ हिन्दू जनरल । अक्टूबर १९३२ ।
- १८ एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ, पृ० १५ ।
- १९ ब्रिटिश एकेडेमी में दिया गया भाषण, २९ जून, १९३८ ।
- २० ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १९५० ।
- २१ श्रीलंका में प्रकाशित, १९३३ ।
- २२ १९३६ में प्रकाशित ।
- २३ १९४६ में प्रकाशित ।
- २४ पूना में प्रकाशित १९४४ ।
- २५ मद्रास में प्रकाशित, १९३६ ।
- २६ बम्बई में प्रकाशित, १९४५ ।
- २७ मद्रास विश्वविद्यालय में दिया गए भाषण, १९३१ ।
- २८ १९३३ में प्रकाशित ।
- २९ ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, १९३६ ।
- ३० १९४७ में प्रकाशित ।
- ३१ ट्यूडर में प्रारम्भिक जीवनीपरक निबन्ध ।
- ३२ माइ सध फार टु, पृ० १५२ ।
- ३३ यह सी० ई० एम० जोड द्वारा प्रयुक्त वाक्यांश है ।
- ३४ जोड काउंटर अटक फ्राम द ईस्ट, पृ० १६ ।
- ३५ राधाकृष्णन का आग्रह है कि दशन की असफलता पर भी चतनी ही सावधानी से विचार होना चाहिए जितना उसकी सफलता पर ।
- ३६ अथवा, जसा उ होंने एक बार शोभ म कहा था क्या अतत दशन असत्य के पीछे दौडने के सिवाय और कुछ नहीं रहा है ?
- ३७ राधाकृष्णन ने अपने कई दीक्षांत भाषणा में इस बात पर बल दिया है ।

३८ अपने फ्रेगमेंट आफ एक्फगन में राधाकृष्णन बार बार इस बात पर जोर देते हैं कि दार्शनिक चिन्तन का सधम वास्तविक जीवन है । (देखिए, ट्यूडर, पृ० १२७) ।

३९ राधाकृष्णन 'विज्ञान के स्थावतनगरी नाम की खजा बडे उरमाह से करते हैं ।

विगपनाएँ उस कुत्तप करने वाले युद्ध और तानाशाहियाँ इतनी नहीं, जितना विभिन्न सत्कृतियाँ का एक दूसरे पर प्रभाव, उनका घात प्रतिघात और आत्मा व सत्या और मानव जाति की एकता पर आधारित एक नई सभ्यता का उदय है।^{१६१} पूर्व की सहायता से मशीन की चुनौती स्वीकार करना भी पश्चिम के लिए उसी प्रकार सम्भव होगा जस कभी उसने अपनी ताकत के नरोसे प्रकृति की प्रतिबलता का सामना किया था। "ता फिर क्या एस दान के लिए प्रयत्नशील होना उचित न होगा जिसमें यूरोपीय मानववाद और एगियायी धर्म के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वों का मिश्रण हो, ऐसा दान जो दोनों ही से अधिक गहरा और अधिक जीवन्त हो?"^{१६२}

इस समीक्षण की प्रक्रिया में धर्म दान का साथ दे सकता है। राधाकृष्णन धर्म का मोसली गति नहीं मानने। किन्तु जीवन्त और गतिशील बन रहने के लिए उस अपनी ऋद्धिवादिता को त्यागना होगा। हमारे ऐतिहासिक धर्मों को अपने भीतर मूलभूत परिवर्तन करके एक सर्वव्यापी आस्था का रूप लाना होगा। 'यह सम्भावना कुछ शोका का भले ही भयभीत करे पर इसका अपना ही मर्य और सौन्दर्य है।^{१६३} सत्यागत धर्म अतीत में मताघात और हिंसा तक के सहयोगी रहे हैं। "मानवता के विभिन्न मतमतान्तर में केवल गतादिमों की प्रेरणा के बाह्य हैं बल्कि गतादियाँ की भूत की जमी हुई पपड़ी के भी बाह्य हैं।^{१६४}

यह राधाकृष्णन व तकनावाद का बड़ा गौरव है कि अपनी गहरी धार्मिक दृष्टि के बावजूद हिंदू धर्म की मुख्य मान्यताओं से लगाव और ईश्वर में दब आस्था व बावजूद इतिहास में उजागर धर्म के अंधेरे पक्षों की कठोर सफाई करना में निराकरण में नहीं निश्चय हैं और उनकी आलोचना केवल अममृत आत्मि सम्प्रदायों तक ही सीमित नहीं है। जटिल पौराणिकता और उसके काव्यात्मक आकषण वाले अधिक कृत्रिमतापूर्ण धर्म प्रकृति पूजा और सवात्मवाद से अधिक खतरनाक हो सकते हैं। प्रत्यक्ष संगठित धर्म की 'अपनी आगएँ और धर्मयुद्ध मुक्तिपूजा और विधर्मोदलन'^{१६५} है। पूजा जितनी ही उत्कट होती है, नामा का अत्याचार उतना ही बढ़ा जान पड़ता है। कभी कभी राधाकृष्णन विभिन्न धर्मों की एक दूसरे के प्रति अभिव्यक्त अमहिम्नुता से हतबुद्धि होत जान पड़त हैं। व कहते हैं—'लपता है धर्मनिष्ठा नतिक विवक शीलता और सर्वान् शील मानववाद को नष्ट कर देगी। धर्म का विराधी अन्य धर्मों से बड़ा दूसरा नहीं यदि सार धर्म हटा दिए जाएँ तो यह दुनिया बही अधिक धार्मिक स्थान बन जाए।'^{१६६}

पर फिर भी धम—विशेष धर्मों से भिन्न—एकता की प्रबल गति हो सकता है। "जब हम सिद्धांतों पर बहस करते हैं तो हम विभाजित हो जाते हैं। पर जब हम चिंतनपूर्ण धार्मिक जीवन को अपीकार करते हैं तो परस्पर समीप आ जाते हैं अहंकार की कठोरता पिघल जाती है, मतों का प्रयोगात्मक रूप प्रकट हो जाता है और सभी आत्माओं का एक सम्पूर्ण आत्मा में तीव्र सकेन्द्रण समझ में आने लगता है।" १६७ सौभाग्यवश विविष्ट धर्मों के अनुपायिका में प्रत्येक युग में ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति होते रहें जो अपने मत के परे दख सकें हैं और यह समझ सकें हैं कि सच्चा धर्म सब-पापी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अपने सधर्मों और अघबिश्वासों के बावजूद संगठित धर्मों में भी बहुत कुछ ऐसा है जो सकारात्मक और स्थायी है। प्रत्येक ने मानव सभ्यता की प्रगति में कुछ न कुछ योग अवश्य दिया है।

मनुष्य की आत्मा ने नाग और मूखता के समस्त सचय से श्रेष्ठतर होने की अपूर्व क्षमता दिखाई है। महान धर्मों के स्वप्न अब भी एक दूसरे को आलिंगन करके फलप्रद बना सकते हैं। 'वे अब भी मानव जाति को—ऐसी बहुमुखी सम्पूर्णता की ओर ले जा सकते हैं जिसमें हिंदू धर्म की आध्यात्मिक ज्योति, यहूदी धर्म की आत्मा और आन्नाकारिता, यूनानी देवताधन की सुंदरता, बौद्ध धर्म की भव्य कक्षा, ईसाई धर्म की दिव्य प्रीति और इस्लाम की त्याग भावना सम्मिलित हो।' १६८

प्रत्येक धर्म और प्रत्येक विचारधारा के सर्वोत्तम अंश के केवल एने समशीकरण द्वारा ही उन आदर्शों और मूल्यों की रक्षा हो सकती है जो मनुष्य में ईश्वर की ज्योति को प्रकट करते हैं। राष्ट्रावृत्त्यन पूर्व और पश्चिम दोनों से सच्चे हृदय से यह याद रखने का आग्रह करते हैं कि पहले की अपेक्षा आज कहीं अधिक पुनः और दशान दोनों का सामना दायित्व उन मूल्यों की रक्षा है जो मानव जाति को एक ही सभ्यता में समुक्त करने की आशा मिलती है। हम अपनी सभ्यता की मूलभूत अवधारणाओं को नये जीवन के निर्माण मागदगान और परीक्षण में लगाना चाहिए। आत्मा के मूल्यों को हमें मनुष्य की क्षितिज के परे चले जान से रोचना चाहिए। इस अधिकतम अमानवीय युग में हम मानवीय होने का प्रयास करना चाहिए।" १६९

सदनें

१ इस आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट आधुनिक भारत में शिक्षा-सम्बन्धी बित्तन की दृष्टि से एक मूल्यवान् दस्तावेज है।

२ यह अध्याय राधाकृष्णन के भारत के राष्ट्रपति होने और साहित्य अकादेमी उपाध्यक्ष पद का त्याग करने से पहले लिखा गया था। अब वे साहित्य अकादेमी के भी अध्यक्ष हैं।

३ वर्जिलियस फम द्वारा संपादित।

४ पाल माथरगिन्ग द्वारा संपादित, १८५२ में ट्यूडर पब्लिशिंग कम्पनी द्वारा प्रकाशित। (बाद के सदन निर्देशों में गिल्स द्वारा संपादित राधाकृष्णन के रूप में इस गद्य के लिए 'बैबल ट्यूडर' शब्द का ही प्रयोग किया जाएगा)।

५ प्रोग्रेसेट आफ ए कफगन (ट्यूडर पृ० ५)।

६ वही।

७ उसी सदन में लिखन हैं— मैं ऐसे वातावरण में बड़ा हुआ जहाँ अद्भुत सत्ता जीवन्त रहती थी।'

८ द रिलीजन ऑफ द स्पिरिट।

९ द रिलीजन आफ द स्पिरिट में उद्धृत (देखिए, ट्यूडर, पृ० ६)।

१० वही पृ० ७।

११ यह उल्लेखनीय है कि यह ग्रन्थ टैगोर के बलाका, बनबाणी तथा परिणेत्य आदि सग्रहा की कविताएँ लिखने के बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका था। इसके अनिश्चित राधाकृष्णन ने मूल बंगला रचनाओं का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं किया था। इन अनुविधाओं के बावजूद उनकी टैगोर की म्याम्या बहुत दिवसनीय है।

१२ द फिलसफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृ० १७७।

१३ इस पुस्तक में राधाकृष्णन मनुष्य की दुर्वृत्ताओं और अपूर्णताओं पर बल देने के लिए धर्म की भी आलोचना करते हैं।

१४ खण्ड १, १९२३ में प्रकाशित, खण्ड २, १९२७ में।

- १५ १९३२ में प्रकाशित ।
- १६ १९३३ में प्रकाशित ।
- १७ द्विव्यट जनरल । अक्तूबर १९३२ ।
- १८ एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ, पृ० ११ ।
- १९ ब्रिटिश एक्स्प्रेस में दिया गया सापण, २६ जून, १९३८ ।
- २० ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, १८४० ।
- २१ थोल्का में प्रकाशित, १९०३ ।
- २२ १९३६ में प्रकाशित ।
- २३ १९४६ में प्रकाशित ।
- २४ पूना में प्रकाशित, १९४४ ।
- २५ मद्रास में प्रकाशित, १९३६ ।
- २६ बम्बई में प्रकाशित, १९४५ ।
- २७ मद्रास विश्वविद्यालय में दिया गए सापण, १८३१ ।
- २८ १९३३ में प्रकाशित ।
- २९ ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, १९३६ ।
- ३० १९४७ में प्रकाशित ।
- ३१ ट्यूडर में प्रारम्भिक जीवनीपरक निबंध ।
- ३२ माइल सब फार टूय पृ० १/२ ।
- ३३ यह सी० ए० एम० जोड द्वारा प्रयुक्त वाक्यांश है ।
- ३४ जोड काउडर अर्देक फ्राम द ईस्ट, पृ० १६ ।

३५ राधाकृष्णन का भाव है कि दान की सम्पत्तिका पर आसतनी ही सावधानी से विचार होना चाहिए जितना उसकी सम्पत्तिका पर ।

३६ अथवा जसा उन्होंने एक बार सोच में कहा था 'क्या अतल दान अमम के पीछे दीहने के सिवाम और कुछ नहीं रहा है ?'

३७ राधाकृष्णन ने अपने कई दीमात आपणों में इस बात पर बल दिया है ।

३८ अपने फेगपेट आफ एक्स्पान्स ऑ राधाकृष्णन बार बार इस बात पर जोर देते हैं कि दानिक चित्रन का सदाय वास्तविक जीवन है । (देखिए, ट्यूडर, पृ० १२७) ।

३९ राधाकृष्णन विमान के सावधानीकारी बाय की जवाब दे उमाह से करते हैं ।

सदने

१ इस आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट आधुनिक भारत में शिक्षा-मन्त्र की दृष्टि में एक मूल्यवान् दस्तावेज है ।

२ यह अध्याय राष्ट्रीयता के भारत के राष्ट्रपति होने और साहित्य अकादेमी उपाध्यक्ष पद का त्याग करने में पहले लिखा गया था । अब वे साहित्य अकादेमी के भी अध्यक्ष हैं ।

३ रॉजलियस फ्रैम द्वारा संपादित ।

४ पाल आयरगिल द्वारा संपादित, १८५२ में ट्यूडरपब्लिशिंग कम्पनी द्वारा प्रकाशित । (बाद के सदस्य निर्देशों में गिल द्वारा संपादित राष्ट्रीयता के ऊपर इस गद्य के लिए केवल ट्यूडर गद्य का ही प्रयोग किया जाएगा) ।

५ फ्रैगमेंट ऑफ़ ए कम्पेन (ट्यूडर, पृ० ५) ।

६ वही ।

७ उसी सदस्य में व लिखन हैं— मैं ऐसा वातावरण में बड़ा हुआ जहाँ ब्रह्म सत्ता जीवन सत्य थी ।”

८ द रिलीजन ऑफ़ द स्पिरिट ।

९ द रिलीजन ऑफ़ द स्पिरिट में उद्धृत (देखिए, ट्यूडर, पृ० ६) ।

१० वही पृ० ७ ।

११ यह उल्लेखनीय है कि यह गद्य टगोर के बलाका, बनबाणी तथा परिणय आदि मगधा की कविताएँ लिखने में बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका था । इससे अतिरिक्त राष्ट्रीयता में मूल बंगला रचनाओं का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं किया था । इन अमुविधाओं के बावजूद उनकी टगोर की व्याख्या बहुत दिवसनीय है ।

१२ द क्लिफ़्स ऑफ़ रवीन्द्रनाथ टगोर, पृ० १७७ ।

१३ इस पुस्तक में राष्ट्रीयता मनुष्य की दुर्बलताओं और अपूर्णताओं पर बल देने के लिए हम की भी आलोचना करते हैं ।

१४ खण्ड १, १९२३ में प्रकाशित, खण्ड २, १९२७ में ।

६६ पी० टी० राजू ने अपनी पुस्तक आइडियलिस्टिक याट ऑफ इडिया में यह मती मानि दिखाया है कि किस प्रकार रामाट्टणन भिन भिन कारणों से दाऊर और रामानुज दोनों की ओर आकर्षित हुए हैं।

६७ एन आइडियलिस्ट यू आफ लाइफ, पृ० २२८।

६८ चाल्म ए० मूर रामाट्टणन म मेटाफिजिक्स एण्ड एथिक्स (द्विए ट्यूडर, पृ० ३००)।

६९ ऐसा अन्तर जो अन्न उच्चतर और निम्नतर दृष्टिकोणों के बीच अन्तर के समान हो जाना है।

७० ईस्टन रिलीजन्स एण्ड चम्पन थॉट, प० २७।

७१ वही पृ० २८।

७२ वही पृ० ८७।

७३ किन्तु वे यह भी कहते हैं — “बहु अनयक सजनामक काय है जो हर वस्तु को यथाय बनाता है।” इसका अर्थ होगा कि निरूपण ‘आइग निवास’ नहीं बल्कि वास्तविक स्रोत है।

७४ द भगवद्गीता, पृ० ३८।

७५ राधाकृष्णन सभी सभी यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि उनकी दृष्टि में मृष्टि के बारे में सोच विचार अनिश्चित निरयक ही है।

७६ ईस्टन रिलीजन्स एण्ड चम्पन थॉट, पृ० ६०।

७७ अपनी एक कविता में टैगोर ठीक यही शब्दावली व्यवहार करते हैं।

७८ आइ सच कार टूथ पृ० २४।

७९ पी० टी० राजू राधाकृष्णन एण्ड इडियन थॉट (द्विए ट्यूडर, पृ० ५३६)।

८० एन आइडियलिस्ट यू आफ लाइफ, पृ० २०० (पाद टिप्पणी)।

८१ द स्पिरिट इन मन।

८२ इस विषय में उनके विचारों की तुलना बगसों के विचारों से की जा सकती है जो बुद्धि को सफल व्यावहारिक काम के क्षेत्र में म्यान देते हैं।

८३ रिप्लाइ टु क्विजिक्स (ट्यूडर प० ७८०)।

८४ वही प० ७८१।

८५ एन आइडियलिस्ट यू आफ लाइफ, प० १८८।

८६ वही प० १८१।

८७ रिप्लाइ टु क्विजिक्स (ट्यूडर, प० ८८१)।

८० राधाकृष्णन इस बात पर भी बल देते हैं कि दशान मूलतः सज नामक है यादिकतापरक नहीं।

८१ चाल्म ए० मूर राधाकृष्णन-स मेटाफिजिक्स एण्ड एपिक्स (देविए, ट्यूडर पृ० २८२)।

८२ एन आइडियलिस्ट ध्यू आफ लाइफ, पृ० १६।

८३ वही, पृ० १७।

८४ जोड काउटर जडक फ्रॉम द ईस्ट, पृ० २४४।

८५ वही, पृ० २६५।

८६ ईस्टन रिलीज-स एण्ड वस्टन घाट, पृ० ३१७।

८७ फ्रोगमेट आफ ए कफगन (देविए ट्यूडर, पृ० १३)।

८८ ए० एन० मारलो स्पिरिचुअल रिलीजन एण्ड द फिलॉसफी ऑफ

राधाकृष्णन।

८९ रिलीजन एण्ड सोसाइटी, पृ० २६।

९० एन आइडियलिस्ट ध्यू आफ लाइफ, पृ० ३४२।

९१ वही, पृ० १५।

९२ डी० एम० दत्त द्वारा अपने निब ध राधाकृष्णन एण्ड कटेम्पररी

जिलासफी म लदघत (ट्यूडर, पृ० ६७१)।

९३ एन आइडियलिस्ट ध्यू आफ लाइफ, पृ० ३४२।

९४ वही पृ० ३४३।

९५ ईस्टन रिलीज-स एण्ड वस्टन घाट, पृ० २६८।

९६ अपनी पुस्तक फिलॉसफी आफ द उपनिषदस मे राधाकृष्णन

नकारात्मक धर्मदशन का वास्तविक महत्त्व दशानि का प्रयत्न करते हैं।

९७ द रिलीजन बी नीड, पृ० २२।

९८ एन आइडियलिस्ट ध्यू आफ लाइफ, पृ० १०२।

९९ वही, पृ० १०३।

१०० वही, पृ० ३४३।

१०१ इडियन फिलॉसफी, खण्ड २, पृ० ६४६।

१०२ वही पृ० ६८८।

१०३ द हिन्दू ध्यू आफ लाइफ, पृ० ३१।

१०४ एन आइडियलिस्ट ध्यू आफ लाइफ, पृ० ३४४।

१०५ कभी कभी राधाकृष्णन ईश्वर को मुख्यतः जगत का 'शक्तिदाता'

ही मानते हैं।

११६ इण्डियन फिलासफी, खण्ड २, पृ० ६२१।

१२० चार्ल्स ए० मूर राधाकृष्णनस मेटाफिजिक्स एण्ड एथिक्स (ट्यूडर, पृ० २८८)।

१२१ वही पृ० २६३।

१२२ इण्डियन फिलासफी, खण्ड २, पृ० ६२७।

१२३ वही पृ० ६२१।

१२४ ईस्टन रिलीजस एण्ड वस्टन थाट, पृ० ८२।

१२५ जोड काउटर अटक क्राम द ईस्ट, पृ० १५१।

१२६ रिलीजन एण्ड सोसाइटी, पृ० १०५।

१२७ ईस्टन रिलीजस एण्ड वस्टन थाट, पृ० ८२।

१२८ द हाट आफ हिंदुस्तान, पृ० २२।

१२९ द हिंदू व्यू आफ लाइफ, पृ० ७८।

१३० रिलीजन एण्ड सोसाइटी, पृ० ११४।

१३१ द रिलीजन बी नीड, पृ० २७।

१३२ ईस्टन रिलीजस एण्ड वस्टन थाट, पृ० १०१।

१३३ वही, पृ० ६५।

१३४ पिछल वर्षों में राधाकृष्णन के नीतिशास्त्र में वरामय विरोधी तत्त्व और भी प्रबल हो गया है।

१३५ फ्रगमेट आफ एक्फगन (ट्यूडर पृ० २६०)।

१३६ प्रो० ए० आर० वाडिया कहते हैं—‘राधाकृष्णन के उन समस्याओं के प्रति स्वस्थ सतुलित दृष्टिकोण की प्रशंसा किय बिना नहीं रहा जा सकता जो पुरानी परम्पराओं और धार्मिक पूर्वग्रहों द्वारा सहज ही उत्पन्न होती हैं। (सोशल फिलासफी आफ राधाकृष्णन ट्यूडर, पृ० ७८२)।

१३७ राधाकृष्णन स्वयं तटस्थ नहीं हैं, वे आदर्शवाद से प्रतिबद्ध हैं।

१३८ ईस्टन रिलीजस एण्ड वस्टन थाट, पृ० ६५।

१३९ इसलिए वे आप्रह्न करते हैं कि सर्वोच्च अर्थ में नैतिक स्वास्थ के लिए गूण समृद्ध और बहुमुखी समृद्धि आवश्यक है।

१४० यहाँ टगोर का प्रभाव द्रष्टव्य है जो आप्रह्न करने थे कि स्वतंत्रता और मध्यम साथ साथ चलते हैं। राधाकृष्णन और टगोर दोनों अराजकतावादी प्रवृत्तियों को अस्वीकार करते हैं।

१४१ किन्तु वे यह मानते हैं कि भाग्यवाद में थोड़ा बहुत वाक्यात्मक आवरण स्वस्थ है।

- ८८ द रेन आफ रिलीजन इन कंटेम्परेरी फिलामफी, पृ० ८ ।
 ८९ वही, पृ० ३ ।
 ९० वही, पृ० १४ ।
 ९१ वही, पृ० ५ ।
 ९२ माड सच फार ट्यूच, पृ० २८ ।
 ९३ द स्पिरिट इन मन ।
 ९४ जाज पी० कागर रायाकृष्णनस बल्ड (ट्यूचर पृ० ८१) ।
 ९५ एन आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ, पृ० १११ ।
 ९६ द स्पिरिट इन मन ।
 ९७ द स्पिरिट इन मन, मुन्नीय द आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ,
 पृ० १७७ भी ।
 ९८ द आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ, पृ० १८६ ।
 ९९ वही पृ० १४३ ।
 १०० द स्पिरिट इन मन ।
 १०१ रिलीजन एण्ड सोसाइटी, पृ० ७७ ।
 १०२ एन आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ, पृ० ८२ ।
 १०३ वही पृ० ६३ ।
 १०४ ईस्टन रिलीजन एण्ड बस्टन थॉट पृ० २४ ।
 १०५ एन आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ, पृ० १४६ ।
 १०६ द स्पिरिट इन मन ।
 १०७ वही ।
 १०८ एन आइडियलिस्ट थू ऑफ लाइफ, पृ० १३८ ।
 १०९ वही पृ० १५२ ।
 ११० द हाट आफ हिन्दुस्तान, पृ० १६ ।
 १११ एन आइडियलिस्ट थू ऑफ लाइफ, पृ० १८७ ।
 ११२ ईस्टन रिलीजन एण्ड बस्टन थॉट, पृ० ८० ।
 ११३ एन आइडियलिस्ट थू ऑफ लाइफ, पृ० ६६ ।
 ११४ ईस्टन रिलीजन एण्ड बस्टन थॉट, पृ० १०३ ।
 ११५ द हिन्दू थू आफ लाइफ, पृ० ६४ ।
 ११६ गंगा द्वारा उद्घन द रिनासांस आफ हिन्दुइज्म, पृ० ६०७ ।
 ११७ ईस्टन रिलीजन एण्ड बस्टन थॉट, पृ० ६८ ।
 ११८ एन आइडियलिस्ट थू आफ लाइफ, पृ० २०४ ।

देमिए, रिलीजन एण्ड द वर्ल्ड काइसिस, और रेन डॉफ रिलीजन इन कटम्पररी फिलासफी ।

१६५ एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ, पृ० ४४ ।

१६६ वही, पृ० ४५ ।

१६७ रिलीजन एण्ड सासाइटी, पृ० ५३ ।

१६८ प्र गमेट आफ ए कपगन (ट्यूडर, पृ० ७६) ।

१६९ राधाकृष्णन इस बात पर जोर देत हैं कि निराशावाद का एक ही उत्तर है कि आध्यात्मिक मूल्य को प्रगति के अक्षय स्रोत के रूप में स्वीकार कर लिया जाए ।

१४२ द भगवद्गीता, प० ४८ ।

१४३ एन आइडियलिस्ट ध्यू ऑफ लाइफ, प० २७८ ।

१४४ जोड काउटर अटक फ्राम द ईस्ट, प० ५३ ।

१४५ वही, प० ५४ ।

१४६ द हिंदू ध्यू ऑफ लाइफ, प० ३७ ।

१४७ तुलनीय, "हिंदू धर्म ने असीम सौष्ठव के साथ प्रत्येक मानवीय आवश्यकता के साथ अनुकूलन कर लिया है।" (ईस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थाट, प० ३१३) ।

१४८ द हिंदू ध्यू ऑफ लाइफ, प० १०८ ।

१४९ वही, पृ० १०८ ।

१५० वही, पृ० १२६ ।

१५१ वही, पृ० ६३ ।

१५२ फ्र गैमेट आफ ए कफगन (टयूडर, पृ० १०) ।

१५३ तुलनीय 'अपने महान् युग में हिंदू सभ्यता ने समुद्रा को पार करके, उपनिवेशों को बसाकर, सत्तार को सिखाकर और उससे सीखकर भी अपनी जीव त सन्निवृत्ता का परिचय दिया था । (द हिंदू ध्यू ऑफ लाइफ, पृ० १२८) ।

१५४ फ्र गैमेट आफ ए कफगन (टयूडर, पृ० ११) ।

१५५ दार्शनिक को दृष्टि से पाश्चात्य सभ्यता के सकट के विस्तृत विस्लेषण के लिए दक्षिण जोड काउटर अटक फ्राम द ईस्ट ।

१५६ राधाकृष्णन के साथ एक निजी वार्तालाप में जोड द्वारा चर्चित

१५७ राधाकृष्णन भी कार्टेजियन परम्परा को 'पाश्चात्य दान में विचारक आत्मा' को ऊँचा बाँकने के लिए दोष देते हैं (एन आइडियलिस्ट ध्यू ऑफ लाइफ, पृ० २७४) ।

१५८ ईस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थाट, पृ० ३४८ ।

१५९ वही पृ० ११५ ।

१६० वही, पूर्वपीठिका ७ ।

१६१ रिलीजन्स आफ द स्पिरिट एण्ड द वेल्थ स नीड ।

१६२ ईस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थाट, पृ० २५६ ।

१६३ तुलनीय, फ्र गैमेट आफ ए कफगन में सबव्यापी धर्म' सम्बन्धी अनभाग ।

१६४ सत्सागत धर्मों की विशेष रूप से तीखी आलाचना के लिए,

भारत का प्रति संवेदनशील अंतर्दृष्टि का अपूर्व मिश्रण है। व भारतीय चिंतन और भावना के उन पन्ना को उभारते हैं जो आधुनिक मानवता की पीड़ित आत्मा को सात्वना प्रदान कर सकते हैं। कुमारस्वामी के सबसे लोकप्रिय निबंध मद्रह डाँस आफ गिव की भूमिका में रोम्मां रोला कहते हैं— मैं यूरोप वासियों को इस लयबद्ध दान का, चिन्तन की इस गहरी मद सुगंध के आनंद का आस्वादन करने के लिए आमंत्रित करता हूँ। इससे उन्हें उन गुणों से परिचय प्राप्त होगा जिनकी आज यूरोप को सबसे अधिक आवश्यकता है—गाति धैर्य आगा अनाकुल आनंद—पवनहीन स्थान में निजपदी की भाँति।^३

२

आनंद कुमारस्वामी का जन्म २२ अगस्त १८७७ को कोलम्बो में हुआ था। उनके पिता सर मुत्तु कुमारस्वामी, सिंहली के और उनकी माँ अंग्रेज। सर मुत्तु बरिस्टर थे पर उनकी अभिरुचियाँ साहित्य और दर्शन तक फैली थीं। किसी पालि बौद्ध ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। आनंद मुद्रिकल सदी वय के होगे जब उनके पिता की मृत्यु हो गई। उनका सारा बचपन और प्रारम्भिक बाल इंग्लैण्ड में बीता। उनकी शिक्षा पहले ग्लोस्टर दायर में वाइविलफ कॉलेज में और फिर लंदन विश्व विद्यालय में हुई। उनकी शिक्षा मुख्यतः विज्ञान की थी यद्यपि वे रूढ़िवाद और विलियम भारिस के प्रभाव में भी आए। उनका डॉक्टरेट का प्रबंध श्रीलंका की भूमि की पर था। पच्चीस वय की अवस्था में ही उन्हें श्रीलंका के विज्ञानीय सर्वेक्षण के निदेशक का पद सौंपा गया। अपने पेशे के काम में उन्हें श्रीलंका और भारत की बलाओं और दस्तकारियों को पाश्चात्य औद्योगिक सम्मता ने जो क्षति पहुँचाई थी उसे देखने के पश्चात् अवसर मिले।^४ जर्मन के प्राच्य संहति के सभी पक्षा, विशेषकर रूढ़िवादियों का गहन अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। नीचे ही उन्होंने यह समय लिया कि उनके जीवन का माय उन मूल्यों और जीवन विधियों का निरूपण और रक्षण है जो यूरोपीय सभ्यता की आज्ञाप्रण प्रगति से सक्त में थी।

अपना गण जीवन कुमारस्वामी ने 'गुड मनीषी' के रूप में केवल मात्र सत्य और ज्ञान की लालसा से प्रेरित होकर बिताया। तीस वय में भी अधिक उन्होंने वाश्टन के रूढ़िवाद मद्रहालय में माय किया। व अविश्राम परिश्रम करते रहे—अध्ययन और मद्रह करने हुए व्याख्या और विनिर्णय करते हुए दूरस्थ स्रोतों और विचारों के बीच समानताएँ गोजन हुए। उनका पत्र व्यवहार

नवा अध्याय

कुमारस्वामी

१

आधुनिक भारतीय चिन्तन के अपने सर्वोत्तम में हमने देखा है कि विभिन्न प्रकार से लगभग सभी चिन्तकों में एक ओर यह इच्छा है कि भारतीय विरासत का जितना हो सके उत्तना अंग सुरक्षित रखा जाए और साथ ही वह हमारे युग के नए मूल्यों और नई ध्वनितियाँ से भी समझौता करना चाहते हैं। लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण चिन्तक में अननुवर्ती, बल्कि नातिकारी, तत्त्व मौजूद हैं। उनमें एक माय हो दो भिन्न आवश्यकताओं पर ध्यान देने का प्रयास दिखाई पड़ता है—परम्परा का आदर और बहुरंग तथा धिते-पिटे तत्त्वों के मूलभूत से भारतीय मानस को मुक्त करने की इच्छा।

परम्परागत दृष्टिकोण की सम्पूर्ण और बिना शर्त स्वीकृति हमें बहुत कम ही दिखाई पड़ती है। आम तौर पर अतीत की परम आनाकारिता श्रद्धाविधता और सवीणता की सद्गामिना के रूप में ही दिखाई पड़ता है। किन्तु इसका एक उल्लेखनीय अपवाद है। आनन्द कुमारस्वामी ऐसे विद्वान और चिन्तक हैं जो भारतीय परम्परा से पूणतया समुक्त होकर भी उस परम्परा की सज्जतात्मक और बहुरंगक व्याख्या करने में समर्थ हैं। वास्तव में, आधुनिक भारतीय चिन्तन में कुमारस्वामी की एक महानगम दान जैसा कि हम गीत ही अधिक विस्तार से देखेंगे, यह है कि उन्होंने परम्परागत जीवन पद्धति में जो कुछ भी उच्चतम महत्त्व का है उसे सौंदर्यपूर्ण दिना दान की क्षमता दिखाई है। यह सही है कि उनका सब भारतीय भावा का समझन कभी कभी उन्हें ऐसी चाना की उपस्था करने का बाध्य करता है जिनकी उपस्था वास्तव में नहीं की जा सकती। पर उनका विवेचन की बहुमुखी प्रवृत्ता और प्रोडना का देखन हुए यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं। कुमारस्वामी की रचनाओं में परिश्रमपूर्ण पाण्डित्य और समस्त सुन्दरता और

प्राच्य सभ्यताओं के, उनके सम्भव के सबसे नाटकीय क्षण में, स्वप्नलोक की भांति प्रनिविष्ट करती है। युग के मानस को—मस्लेपणात्मक, केवल सारमग्रही तत्वा—अश्वर जैसा व्यक्ति के चरित्र में—जिसका सुसंस्कृत मन फारसी और भारतीय चिन्तन की धाराओं से समान रूप में पोषित था—सबसे सच्ची अभिव्यक्ति मिली है।^{१०} कुमारस्वामी की कृतियों में इसी और गजालों का उल्लेख है जो हिन्दू धर्म और इस्लामी एक्स्क्लूजिववाद के बीच गहनतर समानता को सूचित करते हैं।

किंतु वे भारतीय परम्परा के भीतर विभिन्न तत्वों के बीच सामंजस्य दिखाकर ही संतुष्ट नहीं है। पारचात्य सभ्यता की तीव्र और प्रायः कटु निन्दा के बावजूद कुमारस्वामी विरोधक अपने परवर्ती स्थान में, सच्चे विद्वत्प्रेमी के रूप में सामने आते हैं। वे मानव सभ्यता की मूलभूत एकता की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं—'सभ्यता को जब संस्थानीय अथवा राष्ट्रीय के बजाय मानवीय होना होगा अथवा वह जीवित नहीं रह सकती।'^{११} भारत पर अपने गव के बावजूद वे यह कहने में नहीं हिचकते कि "राष्ट्रवाद पर्याप्त नहीं है। देशभक्ति तर्फीय बल्कि तुच्छ भी हो सकती है और महान् आत्माओं के लिए और भी अत्यन्त वाय भीजून है। केवल भारतीय जीवन नहीं, बल्कि जीवन सभ्य हमारी भविष्य का पात्र है।'^{१२} और यह अर्थ और भी अधिक भावपूर्ण है—आदमवाद की आदमवाद से ही कैसे भिन्नता हो सकती है? भविष्य के विवाचित जन कोई जाति या राष्ट्र नहीं, बल्कि पृथ्वी भर का ऐसा अभिजात वर्ग होगा जो यूरोपीय तरणाई के पौरुष की एशियाई वयोवृद्धता के धर्म से सम्बन्धित कर सके।^{१३}

सत्य यह है कि कुमारस्वामी पूर्व और पश्चिम के बीच उत्तरी तीव्र विभक्तता नहीं देखते जितनी उनके कृतित्व से सतही परिचय के बाद जोग कराना कर सके है। इनके विरोध के उस परम्परागत दृष्टिकोण का समयान्तरण है जिस बहुत सनातनियों के पूर्व और पश्चिम दोनों मानते रहे हैं। वे पूछते हैं—'क्या हम कोई ऐसा मूलभूत अनुभूति या धर्म लक्ष्य बता सकते हैं जो समान रूप से यूरोपीय और एशियाई दोनों नहीं है, एशियाई वैश्वधर्मों का उल्लंघन करें तो जिसने हमें, त्यागात्स जीसस की गहर और बघोर की उपनिषदों की शुद्ध पवतीय हवा में साँस ली है, वह क्या हमें उनके लिए परामा हो सकता है जो अफलातून, नाट टोन्स, इन्सिरोएक, द्विष्टमन, नीचे लेब के चरणा में बैठे हैं?'^{१४}

बड़ा विस्तृत था और दुनिया भर में फल हुए असंख्य शोधार्थियों ने उनसे अधिक-से अधिक उदारतापूर्वक और निस्वार्थ सहायता प्राप्त की। १६४७ में अपनी मृत्यु के समय उन्होंने टिप्पणियाँ और निबन्धा का विनाश भण्डार छोड़ा जिसे अभी तक व्यवस्थित किया जा रहा है।^{१५} उनकी पत्नी उनके गोधकाय में सहायता करती थी और हर दृष्टि में उनकी योग्य सगिनी थीं।

कुमारस्वामी हम प्राचीन युग के उन सर्वांगीण प्रकाण्ड मध्यावी पण्डितों की याद दिलाते हैं जो विशेषज्ञता पर बल देने वाले इस आधुनिक युग में इतने विरल हैं। प्राचीन काल के पानी मना की भाँति, अफलातून और लियोनार्दो दा विन्ची की भाँति व समस्त ज्ञान को अपना क्षेत्र मानते थे। वे विद्वत्ता करने थे कि उपयोगी ज्ञान के लिए ज्ञान का सबग्राही होना आवश्यक है। उन्होंने स्वयं कोई दर्शन भर भापाएँ सीखी और उनकी पादटिप्पणियाँ उनके भाषा विज्ञान के ज्ञान की उत्तम सामी हैं। उनका अभिरचिया के विस्तार का अनुमान उनके ग्रंथों और निबन्धों के गीपका तक से लग सकता है। कुछेक का ही उल्लेख करें तो, बंगाल और सौंदर्यात्मक विषय हैं हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, अल्टी इंडियन आर्कीटेक्चर, मनीबल सिंहालीज आर्ट, राजपूत पेंटिंग माइन इंडियन पेंटिंग तथा आभास और पराक्ष पर विनियमन।^{१६} दर्शन और धर्म विषय हैं, द पार्मिनिस् ऑफ क्लिस्तफी, रिक्लिंगन इंडियन एण्ड प्लेटोनिक, प्रेडिगन इवील्यूशन एण्ड रिक्लिंगन, मोने एण्ड द गीता।^{१७} डांस आफ गिब और द सजामेशन आफ नेचर इन आर्ट नामक दो विख्यात निबन्ध संग्रह में तुलनात्मक धर्म ज्ञानमीमासा सांस्कृतिक दर्शन और सामाजिक चिन्तन विषयक मूल्यवान अध्ययन हैं। उन्होंने राजनीतिक और शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर भी निबन्ध लिखे हैं। वास्तव में उनके कार्य पर दृष्टि डालते ही अचरज होता है कि एक जीवन में इतना सब कार्य कैसे सम्भव हुआ होगा।

उनका पाण्डित्य सभी भी सारसग्रही अथवा पशुपति नहीं रहा। किसी भी विषय पर वे समस्त सामग्री पर ध्यान दिये बिना कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं बनाते थे। और जब वे भारत की परम्परागत मन्त्रिणी की चर्चा करते थे तो उनका अभिप्राय केवल हिंदुओं की उपलब्धि से न होता था। बौद्ध धर्म का उनका अध्ययन गहन भी था और गम्भीर भी।^{१८} बौद्ध चिन्तन के सवारात्मक पक्षों पर बल देने वालों में वे सर्वप्रथम थे। भारतीय संस्कृति में, विशेषकर संगीत और चित्रकला में,^{१९} इस्लाम के योग का उन्होंने बार-बार उल्लेख किया है। एक महत्त्वपूर्ण वाक्य है— 'भुगतं नृणां यथाय जगतः को दो महान्

फिर किसी स्वदेशी साधु ने अपनी म एव दो हिस्से खरीदकर अपनी आत्मा को बचाना चाहता है।^{१२*} कारखाना युग भारत में केवल कुरूपता अथवा को ही लाया है। जो कुछ उसके स्वभाव व प्रतिफल है और प्रायः जो कुछ उसके पास मौजूद है उससे हीनतर है उसके दासतापूर्ण अनुकरण को ही लाया है।^{१३*} कुमारस्वामी उन बुरा कोशला की चतुर्विध श्रेष्ठता की प्रार्थना करते हैं जो किसी समय भारत की आत्मा की प्रतिबिम्बित करते थे। 'वे क्षीनी मलमल या फूटों से बुने देशी कपड़ों जिनसे हम अपनी भारतीय स्वभाव के सौन्दर्य की पूजा किया करते थे, वे पोतल के बदन जिनमें हम प्रायः पिया करते थे व कालीन जिन पर हम रंगे पैरो चला करते थे वे बिना ओ हमारे सामने राधा का प्रेम और अमृत हिम की आत्मा का उद्घाटन करते थे आज कहाँ हैं ?'^{१४*} निपुणता के नाम पर जीवन की इन परिष्कृति का स्थान नीरस सदृशता ने ले लिया है जो हम मनुष्यत्वहीन बनाती है। वस्तुओं मनुष्यों से अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही हैं और मशीन का दास उन सब चीज़ों का बुरा रहा है जो किसी समय हम प्रिय थीं।^{१५*}

भारत की जागरूक यह समझना चाहिए कि वह बस "अपनी भारी दायित्व बनाए रखकर"^{१६*} ही अपने आपको परिपूर्ण कर सकता है। उस अपनी विशेष भूमिका नहीं छोड़नी चाहिए। और वह भूमिका क्या है? वह यह सिद्ध करना है जो केवल भारत ही कर सकता है, कि धर्म और दशन में जहाँ रक्षण वाली जीवन प्रणाली ही अधिक से अधिक मनोहर सुन्दर और सौन्दर्यप्रद हो सकती है। भारत के लिए दशन अभी भी निरा बौद्धिक अभ्यास रही रहा उस सदा ही जीवन के नए की बुरी समझा गया है। यदि यह पूछा जाए कि विश्व सभ्यता की प्राप्ति के लिए भारत कीन ही आंतरिक संपत्ति प्रस्तुत करता है तो उत्तर उसके धर्म और दशन में अमूल्य सिद्धांतों की व्यावहारिक जीवन में लागू करने में सोचना होगा।^{१७*} यूरोप को भारत की इन आंतरिक सभ्यता का उपयोग करना चाहिए। "यदि अज्ञानता अथवा एशिया की कुछ समझन के कारण रचनात्मक यूरोपीय चिन्तन पौराणिक दासता से सहयोग करने में चूब गया तो ऐसा समय आ जाएगा जब यूरोप उद्योगवाद से लड़ ही नहीं सकेगा क्योंकि तब तक सन् भारत में भी अपने पैर जमा चुका होगा।"^{१८*} और भी अधिक अग्रगण्य-भूचक चेतावनी देन हुए व बहुत हैं "यदि एशिया यूरोप ने साथ नहीं हुआ तो वह उसके विरुद्ध होगा और सम्भव है कि आदिवासी यूरोप और मौलिकवादी हो गए एशिया के बीच मध्यक मध्य सिद्ध जाए।"^{१९*}

कुमारस्वामी ने ये वाक्य जिन्होंने के बाद से पूर्व और पश्चिम के

पर 'परम्परागत दृष्टिकोण' से कुमारस्वामी का ठीक-ठीक अभिप्राय क्या है ? उनके मन में प्राचीन और पूर्व मध्ययुग की वह सम्म्यता है जिसकी जड़ें मूलतः धार्मिक जीवन-पद्धति में थीं। यह सम्म्यता जितनी पूर्ववर्ति थी उतनी ही पाश्चात्य भी थी। यूरोपीय पुनर्जागरण तक दोनों मोलाघातों के बीच कोई खाई नहीं थी। 'यूरोपीय सम्म्यता का महान चक्र बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में अपने शिखर पर पहुँचा। तेरहवीं से बीसवीं शताब्दी तक हम जीवन का अधिकाधिक विघटन देख सकते हैं—सज्जनात्मक इच्छा शक्ति की क्षीणतर होती अभिव्यक्ति दृष्टि का ह्रास, पूर्ण अराजकता के इस क्षण तक, जब जीवन और कला शताब्दियों की लयहीनता के प्रमाण हैं।'^{१२} कुमारस्वामी अफलातून में तथा आरफिमस के रहस्या में, सज्ज अगस्तीन में, मीस्टर एक्हाट और टामस ए० केम्पिस में वही आध्यात्मिक प्रेरणा देखते हैं जो महायान बौद्ध धर्म की, चण्डीदास और टगोर की रचनाओं को अनुप्राणित करती है। 'यदि हम आज के आधुनिकतावादी, व्यक्तिवादी दशनों को छोड़ दें और केवल महामना दार्शनिकों की महान् परम्परा पर विचार करें, तो यह पता चलेगा कि पूर्व और पश्चिम के बीच अन्तर बोलिया के अंतर के समान है जब कि मूलभूत आध्यात्मिक भाषा एक ही है।'^{१३}

पर पुनर्जागरण के बाद विश्व संस्कृति की एकता भंग हो गई और औद्योगिकता की वृद्धि के साथ पूरी स्थिति ही जड़ से बदल गई। पश्चिम अपने धार्मिक आधार से कट गया और पूर्व में विशेषकर भारत में जीवन और चिंतन पहले की भाँति चलता रहा। "अफलातून के दशन जसा दशन एक प्राच्य ग्राम में आज भी जीवन्त गति है हमारे किसान गहन दार्शनिक महत्त्व के महाकाव्योपम साहित्य से और असीम मूल्य के नाच और संगीत से भली भाँति परिचित है।'^{१४} कुमारस्वामी आधुनिक पश्चिम में आन्नामक अतिक्रमण द्वारा इस निराकुल आत्मसंतुष्ट जीवन के दाँव में व्याघात पर दुखी हैं। "मारतीय जीवन का सौन्दर्य और तक आज मरणशील अतीत का अंग है। उनीसवीं शताब्दी ने भ्रष्ट बहुत कुछ किया है रचा कुछ नहीं।'^{१५} नई शिक्षा पद्धति और समाज के नए ढाँचे ने "एक ऐसे सतही और व्यंग्यहीन अनुप्य को, जिसकी कोई जड़ें नहीं, एक प्रकार के बौद्धिक अछूत को'^{१६} उत्पन्न किया है।

बहु मध्य के साथ कुमारस्वामी उस पश्चिमी रंग में रंगे भारतीय को चर्चा करते हैं जो 'अपने घर की दीवारों को सस्ते तैलचित्रों से बदलूँ करता है यूरोपीय संगीत के कण रिकावों से आनंद पाने का दाग रचता है और

विज्ञान शक्तियों की जय सफलता के रूप में कल्पना करता है वहाँ सर्वात्मवादा (जो भी एक प्रकार का दशन ही है) इन शक्तियों को भूत रूप देकर उनमें स्वतन्त्र सन्तुल्य शक्ति की प्रतिष्ठा करता है। '२६ व दोनो ही 'प्रस्तुति के प्रकारों से सम्बन्धित हैं। व दोनो ही उस अस्तित्व का, जो वस्तुओं की नाता व मन में, तत्त्वा, मूल जानिया और प्रज्ञानियों व रूप में है। ' नान खाजते है। व दोनो ही ' ज्ञात वस्तुओं के सम्बन्ध में सन्तुल्य की गतिविधि का नियन्त्रण करना चाहते हैं।

पर एक भिन्न और उच्च प्रकार का दशन भी हाता है—वह है 'आत्मिक ज्ञान' उदघाटित सत्य तत्त्वमीमासीय विज्ञान। उसे प्रथम दशन कहना उचित है—बालक्रम में नहीं, मुर्यात्मक दृष्टि से प्रथम। उच्चतर दशन निम्न दशन को अस्वीकार नहीं करता। इसके विपरीत मानव विज्ञता से तत्त्वमीमासीय विज्ञता को अपने से पूर्ववर्ती मानकर उसे तत्त्वमीमासीय विज्ञता के आशिक सादृश्यमूलक विवेचन के लिए लागू किया जा सकता है। कुमारस्वामी सावधानी के साथ यह धारणा उत्पन्न करने से बचते हैं कि दोनो अनुशासनों के बीच कोई ऐसी खाई है जिसे पाटा नहीं जा सकता। यद्यपि ज्ञान विज्ञताएँ भिन्न प्रकार का हैं फिर भी उनके बीच संयोग या सामंजस्य सम्भव है दोनो ही एक दूसरे पर, यद्यपि विभिन्न रूप में निर्भर हैं विज्ञान अपने समाधान के लिए उदघाटित सत्य पर निर्भर करते हैं और उदघाटित सत्य उदाहरण द्वारा निरूपण के लिए विज्ञान पर निर्भर होता है। ' ३

इस उच्चतर दशन में निम्न दशन का सम्पूर्ण शत्रु अतनिहित रहता है पर उसमें 'ऐसी मताओं का जमकर विवेचन हाता है जो देशकालमूलक गठन में पूर्णतः नहीं आती। वह परिवर्तन से स्वतन्त्र एक 'अभी की घणायता का पुष्ट करता है। वह प्रत्यक्ष सूक्ष्म तथ्य में सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्धित घणायता के प्रतीक को खोज पाता है। इस प्रथम दशन में घम और तत्त्वमीमासा का हसी दुःखी मिलन होता है। उद्घाटन द्वारा ज्ञात सिद्धांत के रूप में सर्वोच्च विज्ञता की—जो अज्ञात अनुद्विगम्य वस्तुओं से सम्बद्ध होकर भी अपने-आपमें सुमंगत बिन्दु अक्षयस्थित और बुद्धिगम्य है—हमारी पहली समस्या है घम और तत्त्वमीमासा की विभाजित किए बिना ही उनमें अंतर कर सचना यह विभ्रं है पृथक्ता नहीं, जसा सार और गुण के विषय में हाता है। ' ३१ कुमार स्वामी मानते हैं कि परम्परागत भारतीय चिन्तन में इस समस्या का उचित समाधान मीजुद है। घम और तत्त्वमीमासा में सामंजस्य स्थापित कर लिया गया है और 'ज्ञानविषयक विज्ञता की सुन्दर ढंग से उच्चतर विज्ञता की प्राप्ति के

वैचारिक सम्बन्धों में बहुत से परिवर्तन हो चुके हैं। उनका विश्लेषण अब समस्याओं के अतिसरलीकरण पर आधारित जान पड़ता है। 'आदर्शवादी यूराप' और 'भौतिकवादी एशिया' के बीच भारी विभाजन के विचार को अब बहुत कम लागू स्वीकार करेंगे। और भी कम व्यक्ति यह मानेंगे कि औद्योगिक विकास निरा अनिष्ट अथवा दाशनिन सम्पूर्णता के लिए निता न बाधा मात्र है। फिर भी कुमारस्वामी 'सनातन दशन' के सर्वव्यापी मूल्य व पन्नों की, तथा उसके लिए उत्पन्न मतभेदों की ओर ध्यान आकर्षित करके बड़ी भारी सेवा कर रहे थे।^{१५}

पर यह पूछा जा सकता है कि जिस 'सनातन दशन' की वे चर्चा करते हैं वह कोई यथार्थ वस्तु है अथवा निरी दार्ष्टान्तिकी मात्र जो केवल कुछ बिम्ब आप्रस्त करती है। यह स्वीकार करना होगा कि कुमारस्वामी ने परम्परागत दृष्टिकोण की यथार्थ विशेषताओं को स्पष्ट करने के नित्य से बचना नहीं चाहा है। अपने नियम पट्टिनेस आफ फिलासफी में वे दो प्रकार के दशन बताते हैं। उनकी युक्तियाँ की सतों में प्रस्तुत करना उपयोगी होगा। सबसे पहले जिसे वे 'ज्ञान के विषय में विनता' का वर्णन करते हैं, ऐसी विनता जो मनुष्य की वैज्ञानिक तकनापरक साज सजा पर आधारित है। 'ऐसी विनता व्यवस्थित होती चाहिए, और व्यवस्था बन्द होनी चाहिए जो दश-काल और काय कारण के क्षेत्र तक सीमित हो क्योंकि वह प्राक्कल्पना द्वारा नैप और निश्चित वस्तुओं के विषय में है।' इस प्रकार की विनता कभी निश्चित स्थापनाएँ नहीं कर सकती, वह केवल सफलता की अधिक सम्भावनाओं की भविष्यवाणी कर सकती है।

इस दशन के अनुसार, जिसमें "मानव विनता केवल अपने भाप निर्भर रहती है एक ऐसा धर्म प्रकट होता है जिसकेवल प्राकृतिक धर्म" कहा जा सकता है। इस धर्म का 'देवता वह निदिष्ट शक्ति है जिसका काय सब जगह दिखाई पड़ता है पर जो किसी तरह विवर्तण में नहीं आती, जैसे जीवन' या 'ऊर्जा।' यह प्राकृतिक धर्म सर्वेश्वरवाद का या बहु ईश्वरवाद का, या दार्शनिक बहुत्ववाद का भी रूप ले सकता है, पर सत्वात्मवादी दृष्टिकोण सदा विद्यमान रहता है। वह 'विन' की आत्मा' की कल्पना करता है या 'शक्तियों की महायता का सहारा लेता है जिससे दृश्य वस्तुओं और शक्तिविधियों के जगत की व्याख्या कर सके। कुमारस्वामी का कहना है—और यह चौंका देनेवाला कथन है—कि विज्ञान सर्वात्मवाद का विरोधी होना तो दूर वास्तव में उसका समर्थक है। 'विज्ञान सर्वात्मवाद से केवल इस बात में भिन्न है कि जहाँ

विपरीत तत्त्वों के घात प्रतिघात में ही सम्पूर्ण सचदत्तामूलक जीवन साधन सम्भवन निहित है।^{११३} यह साधन सम्भवन, यह प्रतिपक्षों का अन्तर्हीन जुलूस भारतीय मानस के लिए बाईं कठिनाई नहीं प्रस्तुत करता क्योंकि वह उसके पीछे छिपे उस सौ दम को देख पाता है जो जीवन की एकता प्रदान करता है। कुमारस्वामी कहते हैं— भारतीय अनुभव का नेत्र और सार समस्त जीवन की निरंतर अतः प्रज्ञा में और उस सहज अमिट विश्वास में है कि इस एकता की स्वीकृति ही सर्वोच्च शिव और अविकृत स्वतंत्रता है।^{११४}

कुमारस्वामी ने भारतीय चिंतन के इस केंद्रीय सार पर आग्रह करके न केवल परम्परागत दशन और धर्म के अध्ययन पर एक नया बल दिया, बल्कि भारतीय राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठाया। वे राष्ट्रवाद की अवधारणा के मूलभूत तत्वों के पुनर्वरीक्षण पर बार-बार आग्रह करते रहे। वे कहते थे कि सच्ची देशभक्ति की माँग है कि हमारा दण अपनी सुंदरता और शोभा के भंगार की रक्षा करके उसे और भी समृद्ध करें। उन्होंने राजनीतिज्ञों से पूछा है— क्या आपने कभी ममझा है कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र किन्तु अपनी अंतरात्मा में यूरोप द्वारा परास्त, भारत ऐसा आदम नहीं प्रस्तुत कर सकता जिसके लिए कोई जिए या मरे ?^{११५} देशभक्ति के कतघ्य के प्रचलित भारे का उत्प्रेषण करते हुए उन्होंने कहा था— क्या आपकी कभी यह भी सूझा है कि अपने जीवन और अपने परिवेश की नैतिक बनाना जितना आवश्यक है उतना ही उन्हें सुंदर बनाना भी—बल्कि यह भी कि सुंदरता के बिना सच्ची नैतिकता सम्भव नहीं, ठीक वैसे ही जैसे नैतिकता के बिना सच्ची सुंदरता सम्भव नहीं ?^{११६}

इस भाँति राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अवधारणा का विस्तार करके कुमार स्वामी ने राष्ट्रीय जीवन के एक ऐसा पक्ष की ओर ध्यान खींचा है जिसकी उपेक्षा करना खतरनाक है। उन्होंने शुद्ध चिंतक और शुद्ध राजनीतिज्ञ के एकान्वी रस्य में अत्यधिक आवश्यक संशोधन प्रस्तुत किया है। वास्तव में शुद्ध राजनीतिज्ञ तो 'आदमवादी अथवा प्रायः तनिक भी राष्ट्रवादी नहीं होता।' चरम विप्लव में राष्ट्र अपने कलाकारों द्वारा ही निर्मित होता है। स्वयं का राज्य भीतर है बाहर नहीं, राष्ट्रों की स्वतंत्रता के विषय में भी यही सच है। यह कविता का—कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतकार, कलाकार सब पर्यायवाची शब्द हैं—काव्य है कि अपने चोताओं को स्वतंत्र बनाये। यही राष्ट्र का स्थान निर्धारित करते हैं।^{११७} जब कुमारस्वामी ने यह विचार प्रकट किए तो कुछ लोगो को लगा कि वे विवादी स्वर उठा रहे हैं। टैगोर ने भी तब

लिए मानव चेतना को तैयार करने के काम में लगाया गया है। इसके अतिरिक्त हम तैयारी का वास्तविक जीवन में सभी पक्षों में व्याप्त हो जाने दिया गया है, उसे मन या आत्मा की एकान्त प्रक्रियाओं तक ही सीमित नहीं रखा गया है।

'सनाउन दगन' का यह निरूपण चाह मौलिक हो—वास्तव में कुमार स्वामी बार-बार कहते हैं कि मौलिक नहीं है—पर वह ओजस्वी और व्यापक है। कुमारस्वामी की उपलब्धियों को प्रस्तुत करने के लिए रोमियाँ रोला कं गन्ना स बेहतर शब्द मिलना बठिन है—'कुमारस्वामी की रचना (हंस और गिव) का उद्देश्य है भारतीय आत्मा की शक्ति को दिखाना, उस समस्त वैभव की दिशाओं जो उसका मातर संचित है। भारत का विराट और प्रगाढ़ तत्त्व चिन्तन प्रकट होता है—उसकी जगत् की अवधारणा, उसका सामाजिक संगठन उसकी कला का तजस्वी उदघाटन। इस ग्रन्थ के सघन और सुव्यवस्थित प्रासाद से भारत की सम्पूर्ण विराट आत्मा एक परम समन्वय की प्रधानता की घोषणा करती है। ३२

४

कुमारस्वामी ने इस परम समन्वय के निरूपण की सबसे महत्त्वपूर्ण विधि पता यह है कि उनका अपने अध्ययन के विषय के सम्बन्ध में सुसंगत सौन्दर्य परक दृष्टिकोण ही बना रहता है। टैगोर और अरविन्द ने भी भारतीय चिन्तन और धर्म की कला-अनुभूति के रूप में व्याख्या की है। पर उन्होंने कवि-रूप में लिखा है विद्वान के रूप में नहीं। कुमारस्वामी निरन्तर विद्वत्ता के क्षेत्र में ही रहते हैं। वे अपनी व्याख्याओं का कवि-रूप से प्रभावित नहीं होने दते, बल्कि अपना आधार दृष्टांतों के मूल श्रवणों को ही बनाते हैं। वे कहते हैं—“हम गूढ़ भारतीय दृष्टिकोण से लिख रहे हैं गणित जैसी सुनिश्चितता से बात कहने का प्रयास करते हैं पर कभी अपने गर्भों द्वारा नहीं कहने और न ऐसा स्थापनाएँ करते हैं जिनके लिए गान्धे का सुनिश्चित प्रमाण न दिया जा सके। किसी ने हाल ही में कहा है कि कुमारस्वामी की लेखनी सूक्ष्मता के अंगार की प्रति है। सचमुच आधुनिक अध्ययन के क्षेत्र में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं है जिसमें यों न प्रति इतनी सतृप्तता के साथ-साथ जो कुछ सौन्दर्य दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है उसके लिए ऐसा सहज बोध भी मौजूद हो

कुमारस्वामी भारतीय दगन में 'दिव्य प्रक्रिया के रूपपूर्ण स्वरूप' के संप्रेषण का बहुमुखी प्रयास दर्शाते हैं। इस रूपबोध के कारण ही भारतीय मानस भाता और विषय, आत्म और अनात्म, एकता और अनेकता जीवन और मरण जन्म गुणा ॥ मामना हान पर अन्ना मतुलन बनाए रख मका है।' इन परस्पर

संदर्भ

१ यह विचारणीय है कि आधुनिक समाज के अनुयायी भी, जो मुस्लिम खुराना प्राचीनतावादी आन्दोलन था, परम्परा की बिना शत स्वीकृति की माँग नहीं करते थे ।

२ कुमारस्वामी के लक्षण में बीच-बीच में सीखी व्यंग्य की धार है, विशेषकर जब वे पश्चिम के 'सम्पन्न बनाने के दायित्व' का उल्लेख करते हैं ।

३ रोम्यां रोम्यां डांस आफ़ शिय की भूमिका ।

४ तुर्कीय, वस्त्र उत्पादन के कारखाने के रूप में 'रासायनिक रसा' के विनाशकारी प्रभाव के विषय में उनके विचार ।

५ कुछेक जीवनी सम्बन्धी बातें पृष्ठ १०० पर पाकर श्री कुमारस्वामी की दृष्टि पर आकाशवाणी के इतिहास के नामक पुस्तक की भूमिका से ली गई हैं ।

६ भारतीय कला के कुछ विविध पक्षों के भी बड़े सुन्दर अध्ययन है, जैसे 'भारतीय चित्रों में रात्रि प्रभाव' 'बहुमुखी मूर्तियाँ', और 'मूर्ति कला में मूल पर भाषा-विश्लेषण' ।

७ उनके अन्तिम अध्ययन में एक है 'नृत्य के लिए शब्द और आकाशवाणी की संक्षेप-विश्लेषण' ।

८ कुमारस्वामी ने बुद्ध के जीवन की बहुत सी घटनाओं की अत्यन्त जानकारीपूर्ण प्रतीकात्मक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं ।

९ अपने एक निबंध में उन्होंने एक सूफी मगीतज्ञ अहमद रज़वी का बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन किया है जो 'प्रामाणिकतम धार्मिक भावना से वर्णित गीत गाया करता था' ।

१० यह दिखाने हैं कि किस प्रकार मुगल राज्य स्थानीय भारतीय परम्पराओं को आत्मसात् करके पूर्णतः राष्ट्रीय हो गई थी । तुर्कीय, आकाशवाणी पृष्ठ ८६ ।

११ डांस आफ़ शिय पृष्ठ १४१ ।

१२ वही पृष्ठ १८० ।

ही कारणों से दंगमक्ते को बहुत अप्रसन्न किया था। किन्तु आज पिछली दो दशाब्दियाँ में जो कुछ घटित हुआ है उसने बाद, भारतीय संस्कृति का इतिहास-कार कुमारस्वामी जैसे व्यक्तियों का कृतन दृष्टि बिना नहीं रह सकता जिन्होंने जीवन और चिन्तन के प्रति सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण का समर्थन किया। और न हम इस बात के लिए कुमारस्वामी की प्रशंसा किए बिना रह सकते हैं कि इस सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण के सबसे अभिनयनापूर्ण प्रतीक के रूप में उन्हें मटराज शिव की आकृति मूखी। इस आकृति में उन्हें 'सत्य की एक मूर्ति, जीवन के जटिल तान बान की एक कुञ्जी प्रकृति की ऐसी धारणा जिसका आकषण सभी युगों और सभी देशों के दार्शनिक, प्रेम कवि और कलाकारों के लिए सार्वभौमिक था,' दिखाई पड़ी। उन्हें दोख पड़ी 'भारत के ऋषि-कलाकारों की महान सर्जन शक्ति—ऐसी शक्ति जो इतने महान रूप में महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य मूलमूल रूप की इतनी अभिनयना से परिपूर्ण, रूप खोज सकी।"३३

१३ तुलनीय, "हमें भावी जाति से यह माग करनी चाहिए कि वह यूरोपीय जाति से नाय करे और एशियाई जाति से सौचे ।"

१४ डास आफ गिव, पृ० १५२ ।

१५ वही, पृ० १६५ ।

१६ किन्तु उन्होंने कहा है कि आधुनिक यूरोपीय चिन्तन में पुरानी भावना की ओर लौटने के बहुत से लक्षण मौजूद हैं । नीचे में वे 'यूरोप की अन्तर्जाति का पुनर्जागरण' दर्शाते हैं ।

१७ यह मानना होगा कि कुमारस्वामी भारतीय किसान और दम्त कार के दैनिक जीवन में दार्शनिक विचारों के प्रभाव को कभी कभी बड़ा चढ़ा कर देखते हैं ।

१८ भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के विषय में टेंगोर ने भी ऐसा ही विचार प्रकट किए हैं ।

१९ डास ऑफ गिव पृ० १७० ।

२० आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों में ग्रामीणों से वे जितने दृष्ट हैं उतने और किसी से नहीं । सीमाव्यवस्था तब तक ध्वनिविस्तारकों ने ग्रामीणों की घातक शक्ति का और भी विस्तार नहीं किया था ।

२१ उनकी शिकायत है कि इस 'नकली सभ्यता' की जो कीमत हम चुकाते हैं वह "कलात्मक बोध की जड़ पर कुतराघात से कम कुछ नहीं । (आट एण्ड स्क्वेन्सी पृ० २७) ।

२२ आट एण्ड स्क्वेन्सी, पृ० २ ।

२३ वे चेतावनी देते हैं कि 'मनुष्य और मशीन के बीच प्रतिस्पर्द्धिता सभ्यता का नाश ही कर सकती है ।' (आट एण्ड स्क्वेन्सी, पृ० ३४) ।

२४ डास आफ गिव, पृ० २१ ।

२५ वही, पृ० ३८ ।

२६ वही, पृ० ३७ ।

२७ वही, पृ० ३८ । किन्तु वे यह भी कहते हैं कि यूरोप अभी तक पूरी तरह नहीं समझ सका है कि वह एशिया का कितना ऋणी है ।

२८ हिंदू और बौद्ध धर्म के तुलनात्मक अध्ययन में वे भारतीय परम्परा के उन सत्त्वों को सामने लाते हैं जिनकी अवस्थापना साधकता है (हिंदू इज्जत एण्ड बुद्धिधर्म, पृ० ४) ।

२९ कटम्पररी इण्डियन फिलॉसफी (राधाकृष्णन द्वारा संपादित) पृ० १५४ ।

३० वही, पृ० १५१ ।

३१ वही, पृ० १५८ ।

३२ यह वाक्य दास आफ शिव की भूमिका से है पर यह कथन

कुमारस्वामी की मय कृतिया ने लिए भी इतना ही सय है ।

३३ दास आफ शिव, पृ० ३१ ।

३४ वही, पृ० २२ ।

३५ आट एण्ड स्वदेनी, पृ० ३ ।

३६ वही, पृ० ११२ ।

३७ दास ऑफ शिव, पृ० ६४ ।

डकवाल

१

जिन चिन्तका व विचारा का हमने अब तक विवचन किया है व सब उस परम्परा के अंग हैं जिस अत्यन्त व्यापक अर्थ में हिंदू कहा जा सकता है। यह उतना इस अर्थ में नहीं कि व लोग जन्म से हिंदू थे, बल्कि इस अर्थ में कि उनका बौद्धिक तथा भावामक लालन पालन—उनके बीच दृष्टिकोण की व्यापक और प्रायः भूलभूत भिन्नताओं के बावजूद—उन मूल्यों और अब धारणाओं के आधार पर हुआ था जो हिंदू धर्म की नाव पर भारत में विकसित हुई हैं। किन्तु बहुत से स्थलों पर इस बात का भी संकेत दिया जा चुका है कि हिंदू धर्म और इस्लाम की धाराएँ इनने उन्मुख रूप में और इतने दीर्घकाल तक परस्पर अंतर्लीन होती रही हैं कि किसी भी चिन्तनधारा का केवल हिंदू धर्म से अनुप्राणित मानना सही न होगा।^१ एक हजार वर्ष से इस्लाम भारतीय जनता के चिन्तन और दृष्टिकोण को प्रभावित करना रहा है—कभी कभी प्रत्यक्ष रूप से परबत वार मूख्य और अप्रत्यक्ष रीतिरिवाज से। अर्थात् भारतीय चिन्तन का कोई अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक इस्लामी तत्त्वों पर भी विचार न किया जाए। और यद्यपि मध्य युग में इस्लामी प्रभाव का भारतीय चिन्तन के लगभग प्रत्यक्ष क्षेत्र में काफी विस्तार से अध्ययन किया जा चुका है आधुनिक भारतीय चिन्तन और संस्कृति में इस्लाम के योग की प्रायः उपेक्षा होती रही है।

इसलिए यह उपयुक्त ही है कि अब हम एक ऐसे व्यक्ति के चरित्र का अध्ययन करें जो इस्लामी परम्परा के नुस्खे भण्डार और सबसे स्थायी यमों का प्रतिनिधित्व करता है—ऐसे व्यक्ति के चरित्र का जन्म न केवल दार्शनिक गठ के जटिल माध्यम द्वारा, बल्कि कार्य के घनिष्ठ और प्रेरणादायक माध्यम द्वारा भी, अपने आपको अभिव्यक्त किया। ताकि अब हम

इकबाल की ओर मुँहें जिनके ग़रीब रेगिस्तान की स्वास्थ्यप्रद हवा और पारसी गुलाबों के बागीचा की नीनी सुगंध है। इकबाल ऐसे कवि दार्शनिक हैं जिनका दर्जा केवल टग़ावर के ही बाद आता है, और जिनके रूपक अपनी सुंदरता और गहराई तथा शक्ति से हम प्रायः चौंका दते हैं।

यद्यपि इकबाल का महत्त्व सभी लोग स्वीकार करते हैं फिर भी आधुनिक भारतीय चिन्तन व इतिहास में वह कुछ विवादास्पद व्यक्ति हो गए हैं क्योंकि उनके कृति में और दृष्टिकोण के खोला को प्रायः अ-भारतीय^२ माना जाता है, और क्योंकि उनमें परधर्मों लपन में ऐसी चिन्तन प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं जो स्वयं उनके अपने पूर्ववर्ती कृतित्व की स्व-सापेक्षता और उदारता से बिचित्र रूप में भिन्न जान पड़ती हैं। उनके बारे में अतहतनील टिप्पणियाँ की गई हैं और यह भी कहा गया है कि उनका कृतित्व अपनी भाषना और प्रभावशीलता दाना में ही विदेशी है। जब हम इकबाल की रचनाओं पर और अधिक समीप से दृष्टि डालते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये टिप्पणियाँ जितनी पूर्वग्रहपूर्ण हैं उतनी ही अ-दयाली में की हुई भी हैं। उनमें बहुत सी एकबाक व चिन्तन की पृष्ठभूमि के विषय में अज्ञान का परिणाम हैं। इस पृष्ठभूमि को अधिक गूँजना के साथ समझन के लिए आधुनिक भारतीय संस्कृति में इस्लाम के स्थान के सामान्य धर्म पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है।

२

जानना आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उभार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ उमरी पहली पंक्ति में हिंदू धर्म के प्रतिनिधि थे। कुछ धार्मिक और राजनीतिक कारणों से—जो अतने अस्पष्ट हैं कि यही उनका विषयन उपयुक्त न होगा—कुल मिलाकर मुस्लिम संप्रदाय गिरा की दृष्टि में विद्यमान रहा। जब कुछ आध्यात्मिकों बाद नये जागरण में निम्मा लन और आधुनिक संसार के अनुरूप बनने की इच्छा से भारतीय भुक्तमानों में भी हलचल हुई तो हम आवाज़ों का उठान अपनी धार्मिक परम्परा के विशेष ढंग में अभिव्यक्त किया। उन परिस्थितियों में यह सबका स्वाभाविक भी था। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९०३ में एकता का समता गोपक एक अल्लसनीय रूप में लिखा था—

जब नवपुत्र के साथ हिंदू को अपने हिंदू धर्म के गौरव का भान हुआ तो यदि तब तक मुगलमान उस चुरबाय मान जाता तो वह निश्चयेह हमारे अधिक अनुकूल होता पर वैसे ही कारणों ने उसी प्रकार मुसलमानों के भीतर भी इस्लाम के गौरव का भाव जाग्रत किया।^३ आधुनिक भारतीय नव

दमवा अ पाप

डकवाल

१

जिन चित्तका के विचार का हमने अब तक विवचन किया है व सब उस परम्परा के अंग हैं जिसे अत्यंत व्यापक अर्थ में हिंदू कहा जा सकता है। यह उतना इस अर्थ में नहीं कि व लोग जन्म से हिंदू थे, बल्कि इस अर्थ में कि उनका बौद्धिक तथा भावात्मक चालन पालन—उनके बीच दृष्टिकोण की यापक और प्रायः भूलभूत मिनसाया के बावजूद—उन मूल्यों और अब धारणाओं के आधार पर हुआ था जो हिंदू धर्म की नींव पर भारत में विकसित हुई हैं। किंतु बहुत से स्थलों पर इस बात का भी संकेत किया जा चुका है कि हिंदू धर्म और इस्लाम की धाराएँ इतने उन्मुक्त रूप में और इतने दीर्घकाल तक परस्पर अंतर्लौन होती रही हैं कि किसी भी चिंतनधारा का केवल हिंदू धर्म से अनुप्राणित मानना सही न होगा।^१ एक हजार वर्ष से इस्लाम भारतीय जनता के चिंतन और दृष्टिकोण को प्रभावित करता रहा है—कभी कभी प्रत्यक्ष रूप से, पर बहुत बार मूढ़म और अप्रत्यक्ष रीतियाँ से। अर्वाचीन भारतीय चिंतन का कोई अध्ययन सब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक इस्लामी सत्त्वों पर भी विचार न किया जाए। और यद्यपि मध्य युग में इस्लामी प्रभावा का भारतीय चिंतन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में काफी विस्तार में अध्ययन किया जा चुका है, आधुनिक भारतीय चिंतन और सृष्टि में इस्लाम के योग की प्रायः उपेक्षा होती रही है।

इसलिए यह उपयुक्त ही है कि अब हम एक ऐसे व्यक्ति के कृतित्व का अध्ययन करें जो इस्लामी परम्परा के कुछेक अव्यक्त और सबसे स्थायी पक्षों का प्रतिनिधित्व करता है—एक व्यक्ति के कृतित्व का जिसने न केवल दार्शनिक गति न जटिल माध्यम द्वारा, बल्कि काव्य के घनिष्ठ और प्रेरणादायक माध्यम द्वारा भी, अपने आपको अभिव्यक्त किया। तो फिर अब हम

हुगन की नोटस जान इस्लाम^१, ओ-मौलाना अबुल कलाम आज़ाद^{११} के लेखन में इस्लाम में सकारात्मक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करने तथा इस्लाम चिन्तन को आधुनिक युग^{१२} की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के बहुमुखी प्रयत्न दिखाई पड़ते हैं। व्यक्तिगत लेखकों के अलावा अहमदिया^{१३} और वहाबी^{१४} जैसे नये धार्मिक आन्दोलनों के अनुयायी भी ये जिन्होंने इस्लाम का साहमपूर्ण और प्रातिकारी दग स फिर ॥ प्रतिपादन करने का प्रयास किया।

इस्लाम की परम्परागत विरासत की पुनर्जागृति की इस प्रवृत्ति का साथ साथ सूफी चिन्तन का प्रभाव भी निरन्तर सक्रिय था। इस प्रभाव का विस्तार और बहो इतनी तीव्रता से प्रकट नहीं होता जितना प्राचीन उद्दामियों का था। आतिश मोर हज और मालिय ग हम आत्मसमर्पण और आमाग्रह का उस विविध मिश्रण की साक्षियाँ मिलती हैं जो सदा सूफी रहस्यवाद का विभिन्न गुण रहा है। बार बार महान उद्गमियों की पक्षिमा में हम सम्प्रदायों की मकोणता से ऊपर उठने का आह्वान सुनाई देता है ताकि एक सव्यापी धर्म स्थापित हो सके।^{१५} यह सही है कि कभी कभी निराशा और उदासा का वातावरण भी महसूस होता है। पर इस कोटि की गायरी कभी धार निराशावाद के स्तर तक नहीं उतरती। बल्कि चिन्तन की भाँति इस्लाम में भी कभी कभी बल मानव जीवन की क्षणभंगुरता पर और ईश्वर में स्वयं के चरम विश्वास पर लिया जाता है। पर अधिस्तरीय मायता मानव व्यक्ति के भूय को दी जाती है और स्वयं ईश्वर का मानवता के रूप में वर्णन किया जाता है।^{१६}

ऐसी ही परिस्थितियाँ में इकबाल का उदय हुआ। उनकी रचनाओं में हम उदार मानववादी प्रवृत्ति तथा सूफी चिन्तन के सकारात्मक आगावादी पक्ष दोनों का सर्वोच्च विकास मिलता है। टगोर की भाँति इकबाल ने भी अपनी महान कलात्मक क्षमताओं का उपयोग मूर्त आध्यात्मिक और भक्ति से युक्त विश्वदृष्टि की स्थापना के लिए किया। बाद के वर्षों में वह इस्लाम के अधिपत सफीय और अनुदार पक्षों की ओर खिंच गए। किंतु इकबाल की इस प्रवृत्ति ने उन कारणों से बड़ा चढ़ाकर दिखाया गया है जिनका दार्शनिक क्षेत्र से साधारणतः कोई सम्बन्ध नहीं। कवि ने उन राजनीतिक गतिविधियों में साथ सम्बन्ध के कारण जो भारत की मार्शुतिक एकता में आन्दोलन को अस्वीकार करती थी, दुर्भाग्यवश कुछ आलोचना ने इकबाल की कविता के मूर्त विश्व प्रेमी स्वर पर भी आपस किया है।

जागरण में इस्लाम के योग को प्रायः इस आधार पर छोटा बताया जाता है कि शिक्षित मुसलमान मुख्यतः प्रगतिशील ढंग से केवल इस्लामी धर्मदंगन की पुनर्व्याख्या में ही लग रहे। किंतु इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि राममोहन राम तक न अपने सुधार आन्दोलन का आधार उपनिषदों का बनाया था। धार्मिक परम्पराओं का यह सहारा अनिवार्य था। महत्वपूर्ण बात यह है कि कुरान की ओर लौटने और इस्लाम की पिछली सफलताओं के गौरवगान के बावजूद उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश मुस्लिम-लेखक सार भारतवर्ष के पुनरुत्थान के लिए सक्रिय हुए और हिंदू धर्म तथा इस्लाम के मध्य समन्वय द्वारा राष्ट्रीय जीवन और चिंतन के पुनर्निर्माण की कल्पना करने लगे।

नई प्रबुद्धता के प्रवक्ता सर सैयद अहमद खां न अपनी सारी अग्नि भारतीय मुसलमानों के सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तर को उठान में लगाई। उन्हें इस कार्य में मुस्लिम कट्टरपंथियों के उग्र विरोध का सामना करना पड़ा, ठीक उसी प्रकार जैसे उनसे पहले राममोहन राम को हिंदू कट्टरपंथियों के विरोध और मतान्धता का सामना करना पड़ा था।^५ उनका उद्देश्य धार्मिक निष्ठा के साथ आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन को शामिल करना था। उनका दृष्टिकोण तत्कालवादी था और वह धर्म के चमत्कारक तत्त्व को त्यागने का आग्रह करते थे।^६ यद्यपि यह सही है कि वे मुख्यतः मुसलमानों की ओर उन्मुख रहे फिर भी मुसलमानों के लिए नृसक राष्ट्रीय सत्सृष्टि की अवधारणा से उनका विचार कौंसो दूर थे। वे मुसलमानों से अच्छे भारतीय बनने का ही आग्रह करते थे। वे उनसे बार-बार पूछते थे—‘क्या तुम एक ही देग में नहीं रहते?’

सर सैयद अहमद के सांस्कृतिक अनुयाइयों में एस बहुत में लोग थे जिन्हें सच्चा प्रगतिशील कहा जा सकता है। यूमुफअली की पुस्तक द रिलीजस पार्ल्टी आफ इस्लाम में हम इतिहास के प्रति पूर्णतः वस्तुनिष्ठ और तत्कालवादी नज़रान मिलती है।^७ साहित्यिक और ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र में, गिबली के लेखन में भी वही सहिष्णुता की भावना मौजूद है। और यह मानना भी भूल होगा कि मुस्लिम प्रबुद्धता सर सैयद अहमद तथा ता कालिक अनुयायियों के युग तक ही सीमित था। सर सैयद अहमद से लगाकर आज तक ऐसे लेखकों की एक लम्बी पंक्ति है जो निरंतर उदारतावादी और मानवतावाद का समर्थन करते रह रहे हैं। ऐसी पुस्तकें हैं, जैसे गुदावरह की ऐसेज इन्डियन एण्ड इस्लामिक,^८ अमीर अली की द स्पिरिट आफ इस्लाम,^९ दुरानी की द ग्रेट प्रॉमिस्ट^{१०}, अहमद

इकबाल ने फारसी और उर्दू दोनों में लिखा, पर गालिब की भांति उनकी रूपाति अतन् उर्दू कविता पर ही आधारित है।

इकबाल यद्यपि मुख्यतः शायर के रूप में ही विख्यात रह, फिर भी उन्होंने अपना गम्भीर दार्शनिक अध्ययन कभी न छोड़ा। उन्हें आक्सफोर्ड में व्याख्यानमाला के लिए आमंत्रित किया गया जो बाद में रिकॉमंडेशन आफ फिलासफी इन इस्लाम शीपर्स से पुस्तकान्वार प्रकाशित हुई। बाद के वर्षों में उन्होंने राजनीति में भी कुछ भाग लिया। १९३८ में उनका देहांत हो गया।

इकबाल के चिंतन को जिन प्रभावों ने ढाला है उनका दोटूक विदलघन बठिन है। उनका प्रबंध डेवलपमेंट आफ मेटार्फिजिक्स इन पर्सिया सूफी चिंतन के गहरे अध्ययन को सूचित करता है। उन्होंने इन्नुल् अरबी और अल् जिल्लो के ग्रंथों का बड़ी सावधानी से अध्ययन किया था। किन्तु अपन कवि स्वभाव के कारण वे रूमी के अधिक समीप आय, जिसकी रचनाओं में सूफी परम्परा में जो कुछ उद्घुष्ट है उसको अभिव्यक्ति मिली है। रूमी की मसनवी में ऐसे बहुत से विचार हैं जिन्होंने इकबाल के सवेदनशील मन को आकर्षित किया—बौद्धिक ज्ञान से प्रेम की श्रेष्ठता का विचार जागतिक विकास और परिवर्तन का विचार स्वतंत्रता का और सबसे अधिक सम्पूर्ण मनुष्य का विचार। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि इकबाल की भांति रूमी भी ऐसे युग में हुए थे जिसमें बहुत-सी परस्पर विरोधी विचारधाराएँ इस्लामी दुनिया में प्रवाहित हो रहा थी। इकबाल की नज़्म जवदनामा रूमी के प्रभाव की मुखर साक्षी है। इकबाल प्रायः रूमी के छन्द का प्रयोग करते हैं और कभी कभी हम उन्हें उनका ही फारसी महानविव लयात्मक प्रभावों का भी अनुकरण करते पाते हैं। *१

यूरोपीय लेखकों में बगसाँ और नीत्शे में उन्हें मरस अधिक प्रभावित किया। बाले ज़त्रोल नामक कविता संग्रह में बगसाँ का परिवर्तन का दृग्गन स्पष्ट प्रतिबिम्बित है और नवाए वस्तु कविता में अवधि के सिद्धान्त की स्पष्ट प्रतिध्वनियाँ गुनाई पड़ती हैं।^{२२} किन्तु नीत्शे का प्रभाव अधिक गहरा है। उसके सक्त्पवाद के अतिरिक्त, नीत्शे के अति मानव के दृग्गन में इकबाल का बहुत मुष्ण किया, यद्यपि वे इस विचार पर अरब दार्शनिका के अध्ययन द्वारा भी पहुँच चुके थे। जागरणाल एशिया के बहुत से प्रतिनिधियों की भांति इकबाल गति और बल के सम्प्रणाय की ओर आकर्षित हुए थे। उन्हें लगता था कि पूर्व सक्त्प का उपासक कारण ही पराजित रहा है। इकबाल

३

मुहम्मद इकबाल का जन्म १८९६ में स्याल्कोट के एक मध्यवर्ति परिवार में हुआ था। उनके पिता पहले सरकारी नौकरी में थे, पर बाद में व्यापार करने लगे और उसमें भी सफल हुए। वे धार्मिक तथा कट्टरपंथी थे, पर उनमें ऐसी स्पष्ट रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ थी जो उन्हें प्रायः सम्पादक घम की सीमा से बाहर ले जाती थी। इकबाल की शिक्षा स्याल्कोट और लाहौर में हुई। वे एक मेधावी छात्र थे और दान में एम० ए० करने के बाद कुछ दिनों तक कालिज में प्राध्यापक भी रहे। साथ ही वे गायी भी करते रहे और बहुत लोकप्रिय हो गए थे। उनकी पहली कविता परम्परागत थी।^{१०} पर दीर्घ ही व दाम्बल से प्रेरित हुए और उन्होंने भारतीय एकता और स्वातंत्र्यता पर हृदयस्पर्शी कविताएँ लिखी।

१९०४ में इकबाल यूरोप गये। केम्ब्रिज में उन्होंने ब्रितानी दार्शनिक चिन्तक, विरोधकर मैन्टेगट^{११} और वाड^{१२} का बड़ा महत्त्व अध्ययन किया। कुछ समय बाद वे जर्मनी गये। म्यूनिख विश्वविद्यालय में उन्होंने फारसी सत्त्व भीमासा पर भी एच० डी० के लिए प्रबंध प्रस्तुत किया। इकबाल ने जर्मन भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया और वहाँ तक वे प्राचीन जर्मन दशन और साहित्य के सर्वोत्कृष्ट जग के अध्ययन में डूब रहे।^{१३} जैसा कि हम नीचे ही देखेंगे, नीत्शे ने उनके विचारों पर गहरा प्रभाव डाला।

इकबाल यूरोपीय जीवन की प्राणवृत्ता और गतिशीलता से बहुत प्रभावित हुए, और कुछ समय तक वे आन्तरिकारी राजनीतिक चिन्ता की ओर भी आकर्षित हुए थे। उनके मन में उन विराट सम्भावनाओं का स्वप्न था जो मानव जाति के आगे खुली पड़ी थी, और वे एशिया की भौतिक दरिद्रता और सांस्कृतिक पिछड़ेपन से बड़े उदास होते थे। किन्तु बाद में जब उनका दृष्टिकोण इस्लाम की धार्मिक भावना से अधिकाधिक रगता गया, वे यूरोपीय सम्पत्ता के यात्रिकतापरक और उपयोगितावादी पक्षों के आलोचक बन गए। यह ध्यान देने योग्य है कि इस वान में उनका विकास टगोर के समानांतर ही था।

१९०८ में इकबाल लाहौर लीट आये और बैरिस्टर के रूप में बकालत करने लगे। इस बीच उनका कुछ श्रेष्ठतम नाव्य प्रकाशित हो चुका था। अगले दोस वर्षों में आधुनिक उद्गू नायक महानतम व्यक्तित्व के रूप में उनकी स्थिति और भी सुदृढ़ हो गई। उनकी रचना इसरारे खुदी की आधुनिक भारतीय नाट्य की इनी गिनी सच्ची दार्शनिक रचनाओं में से एक माना जाएगा।

अच्छा नहीं होती। इस्लाम में अतन्त्र प्रदण की सम्मति और सभ्यता में ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो एक दूसरे से भिन्न हैं। भारत की भाँति ही मध्यपूर्व में भी सहिष्णुता और प्रगतिशील चिंतन को उदारतापूर्वक आत्मसात करने के युगों के बाद कभी कभी ऐसे युग आए हैं जिनमें धर्म का सजीवतापूर्ण पालन बाकी हर बात से अधिक महत्व का माना गया। इकट्ठा यह मनी भाँति समझते थे और इस्लाम की विरासत की विवकपूर्ण स्वीकृति की माँग करते थे।

यह आशय लगाया गया है कि इब्न-ए-सब इस्लामवादी थे और इसलिए उनका चिंतन इस अर्थ में अत्यन्त ही था कि उनकी प्रेरणा का एक मात्र स्रोत भिन्न प्रेरणों की सभ्यता में था। यह मानना पड़ेगा कि उनके कुछ कथन ऐसे हैं जिनमें वे सब इस्लामवाद के समर्थक जान पड़ते हैं। एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था कि 'मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं सब इस्लामवादी हूँ। जिस उद्देश्य से इस्लाम इस दुनिया में प्रकट हुआ वह अतन्त्र पुरा होगा ही। सारा तो अनास्था और लूटे देवता की पूजा का अन्त हो जाएगा।^{२३} पर ऐसे कथन-व्यवहार कम हैं, और यहाँ अनास्था और लूटे देवता जैसे शब्दों का विशेष धर्मों के अनुयायियों के पूजा के रूप का सूचक न समझना चाहिए। ऐसी गलतफहमी प्रत्यक्ष युग में बहिष्कार द्वारा उस सबको सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुई है जो सभ्यताओं के अर्थ में सत्य के विपरीत है। यदि सब इस्लामवाद का अर्थ यह विश्वास है कि इस्लाम के मूलभूत मूल्यों की मर्चाई सब व्यापी है तो उसमें कोई बुराई की बात नहीं। इक्बाल बड़ी दृढ़ता से इस बात में ठीक उसी प्रकार विश्वास करने के जिस प्रकार विवेकानन्द इस बात में कि वैदिक ही सब-व्यापी धर्म है और सारे समार को जदी या देर से बर्बाद के पास ही जाना पड़ेगा।^{२४}

इस बात का अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इक्बाल विशेषकर बाद के वर्षों में उस चिंतन और सभ्यता के प्रति अपन कण की कम आँकने लगें थे जो उनकी जन्मभूमि में धार्मिकता से विवसित होनी रही थी। उनके कुछेक कथन-व्यवहार यह धारणा मन पर छोड़ते हैं कि इस्लाम की भावना से एक होने में प्रयास में वे अपनी बौद्धिक वंशपरम्परा का मुलाए दे रहे हैं जो यदि अपन साम्प्रदायिक पक्ष में इस्लामी था तो अपन बौद्धिक और सौन्दर्यपूर्ण पक्षों में भारतीय भी थी। पर यह मायोचित न होगा कि केवल ऐसे ही वक्तव्यों का पुनर्लिया जाए और उनकी उपयोगिता कर दी जाए जिनमें भारतीय सभ्यता से उनका प्रेम अमिट रूप में अभिव्यक्त हुआ है। यह महत्वपूर्ण है कि उनका प्रभाव केवल भारत में ही पड़ा। सब इस्लामवाद की ओर लूट जाने के बाद

ने अपनी बहुत सी कविताओं में नीतों का नाम लिया है। इस स्पेक जरयुष्ट की कुछ नीति क्याएँ इकबाल की कविताओं में स्थान पा गई हैं। इकबाल ने नीतों में अस्थायी जीवन का पगम्बर देखा। नीतों का श्रद्धाजलि अर्पित करत हुए इकबाल लिखत हैं— 'धरम काय बौद्धिक काय नहीं बल्कि प्राणमूलक काय है जो अह के समस्त अस्तित्व को गहरा बनाता है और सर्वत्र को इस आश्वासन से प्रखर करता है कि दुनिया अवधारणाओं द्वारा केवल देखने या जानने की वस्तु नहीं है बल्कि बनाने और फिर बनाने की वस्तु है।'^{२३}

स्वयं कुरान इकबाल के चिंतन का एक अधिकतम महत्व का स्रोत है। जिस प्रकार अरविंद हिंदू चिंतन और सस्कृति के मूल ज्ञान के रूप में वेदों को लौटने की माँग करते हैं उसी प्रकार इकबाल कुरान को लौटने की। दोनों ही में परवर्ती व्याख्याओं और जटिल भूतपत्तों से बच निकलने की इच्छा और धर्मग्रन्थ के मूल रूप को पहचानने की लालसा दिखाई पड़ती है। किंतु इकबाल कुरान का पूजन पर सम्पूर्ण नहीं मानते और न वे मुस्लिम चिंतन के परवर्ती विकास का पहल ही प्राप्त पूणता के स्तर से नीचे गिरना समझते हैं। इस्लामी धर्मदान का उनका विवेचन न तो शास्त्रीय है न अनुयात्मक। कभी कभी उनका कथन कट्टरपंथी इस्लाम की दृष्टि से निश्चित रूप से अनुवर्ती हैं। उनकी सत्त्वमीमासा विषयक व्याख्याओं में उनकी इस्लाम की व्याख्याओं का उल्लेख करत हुए गिब कहत हैं— 'वास्तव में यदि भारतीय इस्लाम में कवि और नेता के रूप में इकबाल की प्रतिष्ठा न होती तो हमें सदेह है कि ऐसा क्रान्तिकारी और धर्म विरोधी ग्रन्थ कभी भी प्रकाशित हो पाता।'^{२४} इस बात में कि बाद के वर्षों में वह हमें मामल में पुराणपंथी हो गए थे हम उनके अनुवर्ती दृष्टिकोण को कम नहीं आकना चाहिए। उनके उग्रवाद की मात्रा का निगम इस्लामी जगत में उस समय मौजूद स्थिति के सम्बन्ध में ही होना चाहिए। इतने सीधे कथन में भी कि स्वर्ग और नरक कोई स्थान नहीं बल्कि आत्मा की अवस्थाएँ हैं बहुत से कट्टरपंथियों को दृष्ट कर दिया था।

इकबाल प्रायः इस्लाम में परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में बात करत हैं। पर दसने उन्हें यह घोषित करने से नहीं रोकता कि सत्य के हित में परम्परा के विरुद्ध सपथ करना भी आवश्यक हो सकता है चाहे फिर वह परम्परा धार्मिक आस्था द्वारा ही प्रतिष्ठित क्यों न हो। एक प्रसिद्ध फारसी गेर में वह कहते हैं— 'यदि बिना गत परम्परा का पालन ही सबसे बड़ा गुण होता तो स्वयं पगम्बर भी नए रास्ता पर न चल सके होते।'^{२५} इसके अतिरिक्त प्रत्येक सम्पत्ता में कुछ अच्छी परम्पराएँ विकसित होती हैं और कुछ ऐसी जो उतनी

मन की व्याख्या सौन्दर्य के बजाय सकल के रूप में करने लगे तथा और भी बाद में परिवर्तन—यात्रिक नहीं उद्देश्यपरक परिवर्तन—के विचार में उन चिन्तकों को एक नई महत्वपूर्ण दिशा दी।^{३१}

किन्तु यद्यपि बल के ये अन्तर निस्संदह इक्बाल के चिन्तन के विभिन्न कालों में देखे जा सकते हैं, फिर भी कुछ मिश्रित रूप से उनका दसन 'खुशी' (आत्मा) पर केंद्रित है। वे चरम सत्ता एवं 'सन्निधि' में को मानते हैं। इस प्रश्न पर उनका बचपन में फिस्स का प्रभाव तथा और भी अधिक व्यापक रूप में, मक्तेगट का प्रभाव दिखाई पड़ता है। मक्तेगट के दृष्टान्त पर एक लेख में इक्बाल लिखते हैं—'मक्तेगट निरपेक्ष पर दृष्टात्मक पद्धति से पहुँचते हैं। पर वे निरपेक्ष पर ही नहीं रुक जाते। उनके अनुसार निरपेक्ष अपने आपको मृत अह में और भी विभिन्नोद्भूत करता है। जगत् जम नहीं है, वह यथार्थ आत्माओं की व्यवस्था है जिन्हें निरपेक्ष के गुण या विशेषण मात्र नहीं माना जा सकता।'^{३२} इसीलिए खुशी की कुछ महत्वपूर्ण पक्तियाँ का सार इस भाँति व्यक्त किया जा सकता है—आत्मा के बिना कोई अस्तित्व नहीं अस्तित्व आत्मा का प्रभाव है। जो कुछ हम देखते हैं वह आत्मा की छिपी शक्तियों की अभिव्यक्ति है। आप्रत होने पर आत्मा अवधारणाओं का लोक उद्घाटित करती है। जो विचार उनके भीतर छिपे पड़े हैं। उसकी आत्म पुष्टि से अनारम्भ का उदय होता है।^{३३}

इससे ईश्वर के प्रति धार्मिक पक्ष का गहरा मुल जाता है। इक्बाल कहते हैं कि चरम सत्ता 'जीवन की अनुभूति के सर्वोच्च अर्थ में एक यमिनी है। हम समन्वित सम्पूर्णता के अनिरिक्त उसकी कल्पना नहीं कर सकते, जो यनिष्ठ रूप में समन्वित और एक के द्वीय सन्दर्भ बिन्दु से मुक्त' है।^{३४} अवतारवाद के आरोप का सन्दर्भ करते हुए वे कहते हैं—चरम सत्ता तब पूर्व के निर्दिष्ट सज्जनात्मक जीवन है। इस जीवन का व्यक्तित्व के रूप में व्याख्या करना ईश्वर का मनुष्य की आर्ति में डालना नहीं है। यह तो केवल अनुभव के रूप में मोघे तथ्य की स्वीकार करना भी है कि जीवन कोई निराकार द्रव्य नहीं बल्कि एकता का मगलकारी तत्त्व है—एक सत्त्वपणात्मक क्रिया है जो जीवित शरीर के विग्रह या स्वभाव का एक सज्जनात्मक उद्देश्य में अभिष्ट रहती और सर्वोद्देश्य करती है।^{३५}

चरम सत्ता और गहरी व्यक्तित्व में प्राकृतिक आत्मत्व मानने के कारण इक्बाल का दार्शनिक साथ और धार्मिक सम्पूर्णता में सामञ्जस्य स्थापित करने की चिरन्तन समस्या का सामना करना पड़ता है। मनुष्य के भीतर स्थिति की भावना उस अतीत के साथ संयोग की ओर प्रेरित करती है और यह

भी दुनिया उन्हें भारतीय चिंतन का ही प्रतिनिधि मानती रही, इस्लामी चिंतन का नहीं।^{२८}

इकबाल के प्रकृति काव्य में हम उनके भारत में प्रति प्रेम की बहुत सी चलकियाँ मिलती हैं। उनकी रर्गा में बश्मोरी रक्त था और उनके पूर्वज मस्जून परम्परा के प्रशंसक रहे थे। उनकी बहुत सी कविताओं में हिमालय में, हिंदुस्तान के हरे भरे मैदानों और छोटी नदियों में ऐमा रंगाव और ध्यार ज़िन्दाई पढ़ता है जो वालिदास की याद ज़िन्दा है। विगुड दार्शनिक स्तर पर इकबाल की काव्य चेतना पर अज्ञात का अचेतन प्रभाव दिखाना कठिन नहीं होगा।^{२९} उनके दार्शनिक पूरा गीता का पहले ही उन्मेष हो चुका है जिनमें से कुछ तो आज भी बगोड़ों भारतीयों की ज़बान पर हैं। अपनी अन्तिम महत्त्वपूर्ण फारसी नज़्म में इकबाल उन आन्तरिक समस्याओं के लिए दुःख प्रकट कर रहे हैं जो इतिहास में इतनी बार भारत के पतन के कारण रहे हैं। हम सबको देखते हुए इकबाल के चिंतन को अ भारतीय घोषित कर देना कठिन जान पड़ता है।

८

इकबाल का दार्शनिक स्तर मुक़द्दसी और मानवकेन्द्र है। उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक नज़्म इसरारे ख़ुदी है जिसका अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हो चुका है। उनके तत्त्वमीमाया मन्व-धी व्याख्यानो में भी आत्मा की अवधारणा का केन्द्रीय स्थान है। और यही प्राथमिकता उनके प्राचीन अरब चिंतन के ऐतिहासिक और आलोचनात्मक अध्ययन में भी दिखाई पड़ती है। इसका यह अर्थ नहीं कि ईश्वर के चरमसत्ता के स्वरूप से कवि को काँप मत एव नहीं। यह सचमुच ही बड़े आश्चर्य की बात होती कि इकबाल जसा गहरा धार्मिक दृष्टिकोण बाग़ व्यक्ति एमा दार्शनिक रहे जिसमें ईश्वर को कोई स्थान न हो। पर यह आश्चर्यपूर्ण कहा जा सकता है कि इकबाल के दार्शनिक विनिष्टता उसकी भावना और उसका आन्तरिक ईश्वर विषयक विवेचन में नहीं, बल्कि सत्ता की मानव-सकल्य और कम के रूप में व्याख्या द्वारा निघासित होता है।

अपनी जीवन और स्वच्छतावादी काल में इकबाल ईश्वर को चरम सौम्य आत्मा सम्पूर्णता के रूप में देखते थे। इस काल में उनके ईश्वर विषयक कथनों में एक सुस्पष्ट अफ़लातूनी रुग्णता मौजूद है—और इसमें कोई अचर्य की बात भी नहीं क्योंकि प्राचीन अरब चिन्तन में जिसका उनके विचारों पर नव तक प्रधान प्रभाव था, बहुत-कुछ नया अफ़लातूनी है। बावजूद इकबाल

इस धुनी में ही ससार नींद से जागता है।^{४२} हम मानव आत्माएँ ही प्रकृति का बनाने वाली हैं। अपनी कविता सुनकर आरम्भ में इस बाल बाट का यह विचार रखते हैं कि आत्मा ही प्रकृति में व्यवस्था स्थापन करती है। कभी कभी बकते की भी गव्दाचनी में वे कहते हैं—“प्रत्येक अस्तित्व हमारे ज्ञान पर निर्भर है। ससार हमारी प्रतिमा की अभिव्यक्ति है। हमारे बिना न प्रकाश का कोई वास्तविक अस्तित्व है न ध्वनि का।”^{४३} वे देना और बाल को बोध के स्तर-मानते हैं। एक बल्पनाप्रधान मनादशा में वे प्रकृति और सुन्दरता को मनुष्य के प्रति स्पर्धा में जोड़ित बताते हैं। ‘जब एक भावनाशील हृदय का उदय हुआ, एक द्रष्टा पैदा हुआ तो सुन्दरता काँप उठी। प्रकृति ने जब देखा कि मिट्टी में से अपने आपको बनानेवाला, एक आलोचक पैदा हुआ तो वह चिन्तित हो उठी।’^{४४} प्रकृति से मानव जीवन की ओर मुड़ते हुए डकबाल कहते हैं कि ‘आत्म की सलाई ही मूल्य का एकमात्र कमीटी है। संगीत कविता, धर्म राजनीति, बला—इन सबका मूल्य सभी है जब वे आत्मा का तबल बनायें।’^{४५} उपनिषदों की भाँति वे कहते हैं कि आत्मा के गीत ही सब वस्तुएँ अपनी ध्यारी लगती हैं।

वश्य जाँत में मनुष्य के गौरवमान सजीव तुल्य होकर कवि स्वयं ईश्वर को चुनौती देता है। वह कहता है—

“या तो छूट अशकार हो या मुझे अकार कर”^{४६}

धर्म आत्मविश्वास के स्वर में कवि ईश्वर और मनुष्य के बीच एक धार्मिक अन्तिम करता है जिसमें वह दिखाया गया है कि मनुष्य ईश्वर की बनाई हुई दुनिया से अलग होकर उसे सुधारन का प्रयास करता है।

ईश्वर ने कहा—‘मैंने सारी दुनिया को एक ही मिट्टी और पानी में बनाया था तुमने उसे भौतिक इवाइयों में बाँट दिया। मैंने जोड़ा बनाया तुमने उससे तलवार और तीर बना दाले। मैंने जगत् बनाया तुमने उगकाटने को कुहाही बना ली। मैंने पक्षी बनाए तुमने उन्हें पिंजड़ों में बंद कर डाला।

मनुष्य ने उत्तर दिया—‘तुमने रात बनाई मैंने दीपक तुमने मिट्टी बनाई मैंने मुगही तुमने रेमिस्तान बनाया, मैंने बाग तुमने पत्थर मैंने पण तुमने जहर बनाया, मैंने उसका उत्तार।’

ईश्वर ने कहा—‘दुनिया ऐसी ही है और गवाह मत उठाओ।’

मनुष्य ने उत्तर दिया—‘वह है ऐसी पर उसे अभी नहीं, बीती होना चाहिए’^{४७}

गूफी तथा वणव दोनों ही परम्पराओं में कवि इन्हीं अपना अधिकार

बहुत से अवयवों को 'विघटन का, फटना का, बिनाग का, निराश का आश्रय स्वीकार करने के लिए ललचाता है। किंतु रहस्यवाद के इतिहास में 'मिर्दि' की अवस्था में भी ससीम की सत्ता पर आप्रह के भी बहुत से साहसपूर्ण प्रयास मिलते हैं।^{३६} इन्होंने अल अरबी ने फना की व्याख्या व्यक्तित्व के विघटन की बजाय असीम के साथ अपनी मूलभूत एकता की चेतना के रूप में की है।^{३७} इकबाल भी मूलतः यही स्थिति अपनाते हैं। वे असीम की प्राप्ति और अपने व्यक्तित्व का बनाए रखने में कोई अन्तर्विरोध नहीं मानते। सच्ची असीमता का अर्थ असीम विस्तार नहीं (जिसकी धारणा केवल समस्त उपलब्ध विस्तारों का ग्रहण करके ही की जा सकती है)। उसका स्वरूप सघनता में है, विस्तार में नहीं। और ज्याही हम अपनी दृष्टि सघनता पर जमान हैं वैसे ही हम महसूस करते हैं कि ससीम अह असीम से विलग न होने पर भी उससे भिन्न होता है।^{३८}

इन सब बातों में—व्यक्तित्व की मायता, सघनता, आन्तरिकता और आत्मत्व पर बने ससीम व्यक्तियों के क्षेत्र में बिगड़ता और बिबिधता की स्वीकृति—टैगोर और इकबाल के विचारों में बड़ी भारी समानता है।^{३९} यह महत्त्वपूर्ण है कि आधुनिक भारत के दो कवि दाशनिका ने सत्य और मानव जीवन को मूलतः एक ही दृष्टिकोण में देखा है। इस दृष्टिकोण को व्याकरण में अर्थ में मानववादी कहा जा सकता है। टैगोर की भांति इकबाल में भी आधारभूत दाशनिक मायताओं को एक मानववादी विश्वदृष्टि के भीतर गुंथा और विकसित किया गया है। और दोनों में ही इसमें दाशनिक मायताओं की अभिव्यक्ति को समृद्धता और जीवन्तता प्रदान की है।

इकबाल मानव आत्मा को सक्रिय, गतिशील सज्जनात्मक और स्वतंत्र मानते हैं। इन गुणों के कारण ही वे मानव का गौरवगान करते हैं। कुरान को अपने समर्थन में उद्धृत करते हुए वे कहते हैं— कुरान मानव अह की स्वतंत्रता की शिक्षा देता है। आदिम प्रवृत्तिमूलक क्षुधा के स्तर में स्वतंत्र आत्मा की भवेत् प्राप्ति के स्तर तक मानव के पतन की नीतिनिका चुनाव के लिए स्वतंत्र ससीम अह के उदय का सूचित करता है। ईश्वर का यह छतरी माल लाना उमकी मनुष्य में अत्यधिक आस्था का सूचक है। अब इस आस्था के अनुरूप मिट्टी होना मनुष्य का अर्थ है।^{४०} ईश्वर का यह 'छतरी उठाना निरी साहसिकता के कारण नहीं है। इकबाल का विश्वास है कि ईश्वर के मूलमन स्वर्ण की परिपूर्णता के लिए ही मानव आत्मा की 'रचना आवश्यक है—

“तामोरे खुदो में है खुदाई”^{४१}

बढ़ते हुए जगत् के लिए हम मोह के कारण इक्काल काल को सत्ता का के द्र मानने हैं। हमारे युग के किसी अन्य भारतीय चिन्तक ने काल की समस्या पर इतना ध्यान नहीं दिया है जितना इक्काल ने। इसका कुछ ता कारण यह है कि इस्लाम के प्राचीन दान में प्रारम्भिक पारसी दार्शनिकों द्वारा काल के विषय में प्रस्तुत विचारों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। ज़ाह्रा और मानी के काल के रहस्य विषयक चिन्तन को बहुत इस्लाम के ढाँचे में बँठा लेने का प्रयास किया गया इस परम्परा के आधार पर, और सापेक्षता तथा आगतिक विकास के आधुनिक विचारों का सहारा लेकर इक्काल अस्तित्व मात्र का काल बन्दी मानते हैं।

उनकी एक कविता में काल स्वयं प्रकट होकर भाषण देता है। अपन जाबद नामा में इक्काल यह विचार रखते हैं कि चूँकि सत्ता गतिशील है, इसलिए काल का स्वयं अस्तित्व का एक जगभूत सार्व मानना चाहिए। नियति के विषय में वे कुरान की व्याख्या इसी विचार के आधार पर करते हैं। काम कारण क्रम से भुक्त काल (अर्थात् सम्भावनाओं के प्रकट होने से पहले का काल) ही नियति है।^{४३} मनुष्य को भूल क्रमबद्ध काल को चरम काल मानने में है। 'सत्ता के जीवन का हर क्षण मौलिक है और वह जो कुछ उत्पन्न करता है वह सबका नवीन और अप्रत्याशित होता है। वास्तविक काल में अस्तित्व होना क्रमबद्ध काल में बचपन में बँधा होना नहीं, बल्कि हर क्षण में उसका सज्जन करत रहना है। जीवन का एक स्वतन्त्र सज्जनारम्भ क्षण है।' ^{४४}

इस भाँति इक्काल के दान में जितना गति पर बल है उतना ही सज्जनात्मकता पर भी है। अवश्य ही हममें बग़ता का प्रभाव सुस्पष्ट है। पर ग्यारहवीं शताब्दी के अरब दार्शनिक इब्न मस्कव^{४५} का प्रभाव भी किसी तरह कम नहीं है जिसने जगत के विकास की ऊपरी सीढ़ी पर यात्रिवतापरक दिशा से उभर उन्मुखपरक स्वरूप की भिन्नता दिखाई। इक्काल के लिए परिवर्तन मध्यस्थ-मुक्त है इसीलिए वे नीति की विरतन पुनरावृत्ति को अस्वीकार करते हैं जो अस्तित्व की धारा के निरन्तर धीरे-धीरे 'लोप' और 'उत्पन्न' के विचार पर आधारित है। इसी प्रकार इक्काल के लिए वृद्धि हतुपरक है इसीलिए वे बग़सी के दान को पुरो तरह स्वीकार नहीं करते—बग़सी सज्जनात्मकता का स्वीकार करते हैं पर हेतु नहीं।

इक्काल की बहुत सी कविताओं में यह सज्जनात्मक स्थापना का दान गद्यरूप में अभिव्यक्त हुआ है। कवि मानवता का निरन्तर चलन, उच्च में उच्चतर उठान के लिए आह्वान करता है—

मानते रहे हैं कि ईश्वर का न केवल श्रद्धा और प्रेम से सम्बोधन करें, बल्कि कभी कभी खिलवाड़ करते हुए व्यंग्य, निन्दा, बल्कि दोषारोपण के भाव से भी। यह भाव हमें इकबाल की बहुत सी पवित्रधा में भी मिलता है। मनुष्य ईश्वर से कहता है— यह सब बड़ी परिश्रम बहुत हुआ। मृष्टि रचना के काम न तुम्हें थका दिया होगा। अब मेरे दिल में आकर कुछ विश्राम करो। अब मैं प्रकृति पवित्र धरो रहने की अपना मेरे जैसा बहुत पाम होना बड़ी लच्छा है। "४८" ईश्वर की मृष्टि की दुबलताओं पर कवि का व्यंग्य और तीखा है। "सितारों का रास्ता टड़ा मेड़ा है, पर मुझे उससे क्या। आखिरकार यह आसमान है जिसका—तुम्हारा या मेरा? मैं क्या इस जगत् के चारों ओर परेशान होऊँ मालिक तो तुम्हीं हो।" ४९ कवि ईश्वर पर कड़म हाने का दोष लगाता है— अपने लिए ला मक्री, मेरे लिए चारमू।" ५० और उसमें यह करने का साहस है—

"हरो-शरिता हैं असौर मेरे तय्युलात में।

मेरी निगह में बल्लल तरी तजहिलयात में।" ५१

४

अपनी उच्च स्थिति की यह चेतना मनुष्य को अपने जीवन में गति मिलाना का भाव प्रदान करती है। वह अपनी गति को सारे ब्रह्माण्ड पर प्रगपित करता है। वह सब जगह परिवर्तन और स्थावर देखता है। इस भाँति इकबाल का मानववाद उनके परिवर्तन के दर्शन से जुड़ा हुआ है। मानव की महानता अपनी अस्मि-प्रकृति के क्षेत्र के लिए ऐसे जगत की मांग करती है जो स्थिर या बदल न हो बल्कि चरनी मध की भाँति अनन्त सम्भावनाओं प्रस्तुत करना हो। इकबाल और लमोर दाना ही गति के कवि हैं, किन्तु जहाँ लमोर की बलाका में परिवर्तन के लक्ष्य में वर्तमान स्थिरता की गलक बीच-बीच में मिलती है, वहाँ इकबाल का दावेदारा गुरु से आखिर तक गति की स्तुति है

"फरेये नजर हैं मुवूनो सबात
तदपता है हर जर्ग ए-बायनात
ठहरता नहीं कारवाने बज्रद
कि हर ठहरा है ताजा शाने बज्रद
समझता है तू राज है जिंदगी
फरत जीके-शरवाय है जिंदगी
बहुत इसने देखे हैं परतो बलद
सफर इसकी जगिल में बड़कर पमद

झग कम बरत हुए भी पाते हैं। हम भाँति-पाँति से सकल्प की अभिव्यक्ति सुन्दर व चिन्तन-तकना का अहंकार रहस्यवादी अंतर्दृष्टि की होता है।

हम गति-हीन विश्व-दृष्टि में, आत्म व प्रतिप्रियावादो स्त्रान्ताम इकबाल और टगोर के पर एक विशेष मामले में इकबाल और विषय उतरी हो अपूर्व है। विश्वानन्द का भी सखित जाता है। इकबाल की भाँति ही विवकास-दत्त तकनावाद की दृष्टि से धर्म की फिर म व्याख्या और दाना में ही हम विज्ञान के फल-निर्दिष्ट व स्वयं-दृष्टि के साथ मिलान की उत्कृष्ट इच्छा है।

इकबाल के दान के इस पक्ष का उत्तर का कहना है— जीवन के सामर्थ्य के रूप में करण और प्रेम का स्वीकार करके इकबाल (तरीका) के सच्चे अनुयायी निश्चय करते हैं। नहीं है कि एकात्म बुद्धि को अस्वीकार करते हैं। बहुत प्रबल है जो उह जीवन और उसकी समस्या कोण की अस्वीकार के ने की प्रेरित करता है। प्रकृति बार-बार उह तकमूलक बुद्धि के क्षय के म न हताशतापूर्वक यह मानन जान पड़ते हैं कि स य है उस बुद्धि द्वारा नहीं जाना जाता। एक प्रति-इच्छा का जातिन रता। इच्छा के बिना गरी-इच्छा, अपलानून के ईरोस की भाँति तकना के ही नस्तुत है। हम ऐसी पवित्रता भी मिलनी हैं जिन के अदिमुक्त—बदरपयी दृष्टि में अदिमुक्त—एक-एक भाँति बवि करता है—

“धर्म के नियम के सभी रहस्य में सोल हू
उनका मार यह है कि बापिर यह है
जो प्रेम की अस्वीकार करता है।” ६४

और प्रेम की मुक्तिदायी शक्ति में यह आ प्रति एक मोक्षपरक दृष्टि की ओर ले जाती है।

“तू ऐ भुज्जमन उठने से पहले परफिगा हा जा”^{५६}

मनुष्य की नियति विद्व को फिर से रचन की है, धार क साथ वह चलन की नर्तों—

“जीवन का सार कम मे है

सजन का आनन्द हो जीवन का नियम है ।

प्रतिकूल परिचय से समझौता करना

लड़ाई के मदान मे अपनी टाल फेंक देने के समान है ।

बलवान मनुष्य स्वय विघाता क विरुद्ध सघन करता है

सष्टि की नींव हिला देता है,

और उसके अणु-परमाणुओं को नये साचे मे ढालता है ।”^{५७}

कवि का नन्दन है—सतक रणो मजग रहो । वह मानवता स असतोष, बल्कि अन्मुदय की माग करता है । निष्प्रियता को वह किसी रूप मे क्षमा करन को तैयार नहीं चाह वह कितने ही लम्ब-चीड़ बहान बयान बनाए—

“मस्जिद मे उघेत हुए धार्मिक से

वह धनपरस्त अच्छा ह जो मजग होकर

अपनी मूर्ति के आगे सिर झुकाता है ।”^{५८}

मनुष्य के भातर काइ बागी काई विशेही है—और वही उसका गौरव है । इकबाल को यह विचार मशन नहीं कि मनुष्य का अपन चारा आर क जगत क आग बुझना चाहिए और बाह्य परिस्थितियों द्वारा की गई यत्नमा को स्वीकार करना चाहिए ।

कब तक चन्द्रमा का प्रकाश उधार लेते रहोगे ?

रात को अपनी ही जलनी मासा से प्रकाशित करा ।”^{५९}

हमार भीतर जा सचमुच मानवीय है उसकी परिपूर्णता कुछ अद्वितीय उपलब्धि द्वारा ही हा सकना ह, निट हुए रास्ते पर चलन मे नहीं । इकबाल कहत हैं—“नए क लिए प्रयास करो । यह कुछ गुनाह भा हो तो भी उममें कुछन कुछ अच्छाई तो हागी ।”^{६०}

६

फिर भी इकबाल क लखन मे व्यपन इस विषय और आत्म आग्रह क स्वर क वाक्जुद उनक जीवन के दृष्टिकोण मे मूलत कठोर कुछ नहीं है । यदि हम उन्हें स्वच्छ ताबाद की भावुकता क अतिरेक को नीलो द्वारा छीन करत हुए पात्र हैं तो स्वय नीला क सक्लवादी अतिरेक को सूफी माग^{६१}

द्वारा रम करत हुए भी पात हैं। इस भाँति गति की पूर्ति प्रेम द्वारा होती है। सत्य की अभिव्यक्ति सुंदर व चिंतन द्वारा समझित होती है, और सत्यता का अहंकार रहस्यवादी अंतर्दृष्टि से सौम्य विनम्रता द्वारा नियंत्रित होता है।

हम गतिगीत विश्रुति में आत्म के गौरव पर चलते जीवन का प्रतिव्रियावादी रज्जान में इक्काल और टंगार व बीच समानता दाय चुके हैं। पर एक विशेष मामले में इक्काल और विवेकानंद के बीच समानता भी उत्तरी हो अपूर्व है। विवेकानंद का भी दृष्टि और चलना सदा के समान माना जाता है। इक्काल की भाँति ही विवेकानंद का भी आधुनिक विज्ञान और सत्यवाद की दृष्टि से घम की फिर न व्याख्या करने में बहुत दिलचस्पी थी। और दोनों में ही हम विज्ञान के फल गति का धार्मिक अंतर्प्रकाश के फल स्वतंत्रदृष्टि व साथ मिलान की उत्कृष्ट इच्छा स्पष्ट है।

इक्काल के दगा के हम गति का उल्लाप करने हुए एक जागृक का कहना है— जीवन व मागदगा के रूप में युद्धि (अवल) की अस्वीकार करण और प्रेम का स्वीकार करण इक्काल अपने आपसे रहस्यवादी माग (गरीब) के सच्च अनुयायी मित्र करत हैं।^{१२} यह कहना सचपा ठीक नहीं है कि इक्काल युद्धि से अस्वीकार करत हैं। उनमें सत्यवाद की सत्य बहुत प्रबल है जो उह जीवन और उनकी समस्याओं व सत्य में सूफी दृष्टि कोण की अस्वीकार व को प्रगति करत है।^{१३} फिर भी उनकी काव्यात्मक प्रवृत्ति बार बार उह सत्यमूलक युद्धि व धर्म के परल जाती है। ऐसे गणा में यदुतापूवक यह मानन जान पड़त है कि साथ का भावना द्वारा बोध होता है उस युद्धि द्वारा नहीं जाना जाता। एक प्रसिद्ध गौरव व करत है कि 'इच्छा की जाविन रमा। इच्छा के बिना गरीर एक मजार है।'^{१४} यहाँ इच्छा, अफलातून के 'दोस्त' की भाँति ठाना के आवश्यक संपूर्ण व रूप में ही प्रस्तुत है। हम ऐसी पवित्रता भी मिलती हैं जिनमें प्रेम की प्राथमिकता का सत्य स्मृत—वदूरपयी दृष्टि में स्मृत—रूप में घोषित किया गया है। गति भाँति बवि कहना है—

“घम के नियम व सभी रहस्य में सौम्य चुपा है,

उनका सार यह है कि वास्तविक यह है

जो प्रेम की अस्वीकार करता है।”^{१५}

और प्रेम की मुक्तिवादा पवित्र में यह व्याख्या इक्काल का विश्व व नि एक सौंदर्यरक दृष्टि की बार ल जाता है। व यह कहने में नहीं

समीक्षा बाद में राधाकृष्णन की पुस्तक द हाट आफ हिंदुस्तान में प्रकाशित हुई ।

११ मीलाना जाजाद का विशेष योग था इस्लामी चिंतन के इतिहास के आधार पर व्यवित और समाज दोनों की स्वाधीनता की धारणा का विवचन ।

१२ इस्लामी चिंतन के समकालीन प्रतिनिधियां में सबसे प्रमुख हैं जाकिर हुसैन, बे० जी० सैयदैन, हुमायुन कबिर और आबिद हुसैन ।

१३ अहमदिया मिरजा गुलाम अहमद (१८३६-१९०८) के अनुयायी थे ।

१४ बहावी आन्दोलन ने व्यवहार में साम्प्रदायिक रूप लिया था यद्यपि विचारधारा की दृष्टि से उसमें बहुत से प्रगतिशील तत्व थे ।

१५ तुलनीय, गालिब का प्रसिद्ध गैर—

हम मुबहिद हैं, हमारा बेग है तक ए रसूम ।

मिल्लतें जर मिट गइ, अज्जर ए ईमा हो गइ ॥

१६ इस विषय में गजाली और इब्न अल अरबी दो सचपा भिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं यद्यपि दोनों ने ही सूफी चिंतन पर गहरा प्रभाव डाला । गजाली दिव के साथ संयोग की स्थिति में मानव व्यक्तित्व को बनाए रखने के विचार की स्वीकार नहीं करते थे । इब्न अल अरबी आत्मत्व को बनाए रखने पर आग्रह करते हैं यद्यपि उनकी सत्त्वमीमाणा बहुत ईश्वरवादी है ।

१७ गालिब की भांति इकबाल ने भी अपनी प्रारम्भिक जटिल शैली को छोड़कर सरल और सहज शैली अपनाई थी । अवश्य ही यह उनके विचारों की वृद्धि हुई स्पष्टता और श्रुति का परिणाम था ।

१८ इकबाल और मकटगट के बीच पत्र-व्यवहार हुआ था और इन पत्रों में बहुत से दिलचस्प दार्शनिक प्रश्न उठाये गए थे । मकटगट ने इकबाल को उनके परवर्ती लेखन की अपेक्षा पूर्ववर्ती लेखन में अधिक रहस्यवादी माना है ।

१९ इकबाल और जेम्सवाड के विचारों में समानता के लिए तुलनीय, एम० एम० शरीफ इकबाल्स कन्सलेशन आफ गाड ।

२० एक सुंदर कविता में इकबाल ने गये न प्रति अद्वाजली अर्पित की है ।

२१ किन्तु यह कहा गया है कि आत्मा के विचार के सामाजिक और

सदभ

१ मजहबी गतादी के लिखत हुए दारा गुकोह न भारतीय मरुति म हिन और दुस्लामी तहों के समन को 'दो महाभागरो का मिलन' कहा है (मजमूआ ए बहरन)।

२ तुर्कीय सच्चिदानन्द मिहा—'दुखाल म सब-कुछ विदेग' का है घर का कुछ नही। हो सकता है यह लाभदायक हो पर अपनी जन्म भूमि की सम्पत्ति, सम्पत्ति और मानववाद के विषय म उनका ज्ञान और मृत्यु का क्या हो? क्या उन्होंने बुखारा काबुल और तत्रेज व माय माय उह भी समझन का प्रयास किया? (इज्जाल—द पोट्ट एण्ड हिज मतेज)।

३ विन्ध भारती बवावरली म प्रकाशित जुलाई १८२३।

४ तुर्कीय, 'नमा-हदीन अफगानी की पुस्तक रेप्टेगन आफ मरा रिपलिशन, जिसम सर मय अहमद का बरहुमी म मजाब उहाया गया था।

५ धर्म की तबसगत ध्याव्या व प्रयासों के कारण मर सैयद जीर उनका अनुयाइया की नवरी अवात प्रवृत्तिवादी बहा आता था।

६ उस युग क एक और तबनावादी लगव थ मुम्नफा मी एन तथा साजी फार द 'पू लाइट क ग्लोब'।

७ मुदा प्रकाश न लिखा था— मरा कामना है कि मुस्लिम एरता एक उक्वार म मगर भारतीय एकता म विगिन हा जाए जा प्रबल रूप म अकरी और गानदार रंग से सम्पूर्ण है। (एमज इण्डियर एण्ड इस्लामिक पृ० १४)।

८ अमीर अली की पुस्तक द स्पिरि आफ इस्लाम न मध्यपूर्व व मुगलमाना का वस्तु प्रभावित किया था।

९ दगनी न इस विचार का अयहीन बनाया था कि कुरान मे हमारा गव कुरानियों का प्लाज मौजूद है। हम बयन क कारण बहुत स वद्वयवा गयक उमर मर गे थ।

१० म पुस्तक का राष्ट्रापणन न विम्वार म समानता की थी। यह

मिन्नकते कि चरम विरलेपण मे कला दशन से उच्चतर है । सत्ता तक कवि की पहुँच तत्त्वमीमासक से कही अधिक प्रत्यक्ष और धनिष्ठ है—

दाशनिक अविस्तेना तला के ऊँट के परों से उड़ी हुई धूल में लो जाता है,

पर कवि हमी का हाथ सीधा उसकी पालकी के परदे पर पहुँचता है ।” ५५

पना डालो ।'

६० इस धारा में लिखी हुई कुछ पत्रिकाओं में इक्बाल वाट्ट व्हिटमैन के बहुत समीप आ जाते हैं ।

६१ इसने अतिरिक्त रवय नी ने में रसागावाद के चहरे के पीछे एक प्रकार की कामलता है जो सतही परिचय में प्रायः दिखाई नहीं पड़ती । नीला पर एक छोटी नरम में इक्बाल कहते हैं—“उनका दिल यकीन करने वाला है यद्यपि उनका जिमा इकार करता है ।”

६२ फज्जुरहमान इक्बाल एण्ड मिस्त्रिसिद्धम (इक्बाल रोज ए थियर परितवाद से) ।

६३ बहुत से स्थानों पर इक्बाल सूफी मत की विवेचन उसकी उचित निहित निष्कर्षों की बड़ी तीव्र आलोचना करने हैं । उनका विचार में यह निष्कर्ष निश्चिन्तता और अज्ञता की आर से जात है ।

६४ इस धारे पुरी से ।

६५ ऊनूरे आज्ञा में ।

६६ वू अली अ दर गज़ार नाका गुम
दस्तु अमी परदा ए मेहमिल निरपन ।'

समीक्षा बाद म राधानुष्णन की पुस्तक द हाट आफ हिंदुस्तान म प्रकाशित हुई ।

११ मौलाना आजाद का विशेष योग था इस्लामी चिंतन के इतिहास के आधार पर व्यक्त और समाज दोनों की स्वाधीनता की धारणा का विवचन ।

१२ इस्लामी चिंतन के समकालीन प्रतिनिधियों म सबसे प्रमुख हैं खाकिर हुसैन, के० जी० सयदेन, हुमायुन कबिर और आबिद हुसैन ।

१३ अहमदिया मिरजा गुलाम अहमद (१८३६-१९०८) के अनुयायी थे ।

१४ वहाबी आ दोलन ने व्यवहार मे साम्प्रदायिक रूप लिया था यद्यपि विचारधारा की दृष्टि स उसमे बहुत से प्रगतिशील तत्व थे ।

१५ तुलनीय गालिब का प्रसिद्ध शेर—

हम मुन्वहिद हैं, हमारा केश है तक ए रसूम ।

मितलतें जब मिट गइ, अगजा ए ईमा हो गइ ॥

१६ इस विषय म गजाली और इमन अल अरबी दो सवधा भिन्न दृष्टिकोणा का प्रतिनिधित्व करते हैं यद्यपि दोनों ने ही सूफी चिंतन पर गहरा प्रभाव डाला । गजाली दि य के साथ संयोग की स्थिति मे मानव व्यक्तित्व को बनाए रखने के विचार को स्वीकार नहीं करते थे । इन अल अरबी आत्मत्व का बनाए रखने पर आग्रह करते हैं, यद्यपि उनकी सत्त्वमीमाणा बहु ईश्वरवादी है ।

१७ गालिब की भांति इकबाल ने भी अपनी प्रारम्भिक जटिल शली को छोड़कर सरल और सहज शली अपनाई थी । अवश्य ही यह उनके विचारों की वृत्ति हुई स्पष्टता और श्रुता का परिणाम था ।

१८ इकबाल और मकटेगट के बीच पत्र-व्यवहार हुआ था और इन पत्रों म बहुत से दिलचस्प दार्शनिक प्रश्न उठाये गए थे । मकटेगट ने इकबाल को उनसे परवर्ती लेखन की अपेक्षा पूर्ववर्ती लेखन म अधिक रहस्यवादी माना है ।

१९ इकबाल और जेम्सवाड के विचारों मे समानता के लिए तुलनीय, एम० एम० शरीफ इकबाल्स कन्सलेशन आफ गाड ।

२० एक सुंदर कविता म इकबाल ने गेटे के प्रति श्रद्धाजली अर्पित की है ।

२१ किंतु यह कहा गया है कि आत्मा व विचार के सामाजिक और

मास्कुतिक निहितार्थों को प्रतिपादित करने में इकबाल अभी से आगे गए हैं।

२० किन्तु इकबाल बुद्धिवाद विराध के रान्ने पर बगर्सी के साथ बहुत दूर तक नहीं जाते।

२३ इकबाल सखस ऑन मेटाफिजिक्स, पृ० १८७।

२४ गिब माइन ड्रेड्स इन इस्लाम, पृ० ८१।

२५ तुलनाय, टैगोर—‘धर्मशास्त्र भी कभी आविष्कार हो या।’

२६ सखिदान सियाह द्वारा इकबाल द योइट एण्ड हिज मतेज़ में उदघात।

२७ तुलनीय विवेकानन्द—‘विदात विश्वविजय करेगा।’

२८ गिब कहते हैं—‘मैंने इसके कोई चिह्न नहीं देखे कि इकबाल के विचारों का भारत के बाहर कहीं कोई प्रभाव पड़ा।’ (माइन ड्रेड्स इन इस्लाम, पृ० ६०)।

२९ उनकी हिमालय के ऊपर नरम को उनके शिप और सौंदर्य की दृष्टि में सबसे निर्दोष कविताओं में गिना जाता है।

३० खुदी के विषय में इकबाल के कुछ कवनों से उपनिषद् में भारमा के गौरव गान का स्मरण होता है।

३१ इकबाल के दशन में ईश्वर की धारणा का विकास एम० एम० गरीफ द्वारा इकबाल एण्ड ए मिकर नामक ग्रन्थ (लाहौर, १९४४) में अपने लेख में भली भाँति लिखाया गया है।

३२ इकबाल ए रिव्यू ऑफ मैक्टेगट स फिलासफी, नूथ पत्रिका में प्रकाशित।

३३ ‘पकरे हस्ती ज असरे खुदी अस्त

हूँ चाह मे बिनी ज इसरारे खुदी अस्त।’

३४ इकबाल रिवन्सट्रक्चन ऑफ फिलासफी इन इस्लाम, पृ० ७८।

३५ वही, पृ० ६२।

३६ तुलनीय ‘प्राचीन भारतीय चिन्तन में जीवनमुक्ति’ की अवधारणा।

३७ इमन-अल अरबी फना की सत्यमीमासीय और रहस्यवादी व्याख्या में अंतर करते हैं। तुलनीय रोम लेंडो द फिलासफी ऑफ इमन-अल-अरबी।

३८ इकबाल रिवन्सट्रक्चन ऑफ फिलासफी इन इस्लाम, पृ० ११८।

३९ देखिए इस पुस्तक का पाँचवाँ अध्याय, खण्ड ६।

४० इकबाल सखस आन मेटाफिजिक्स, पृ० ८०।

४१ तुलनीय, टंगोर—“मेरे ही जगत् म तुम्हारे सर्वोच्च अधिकार
र होंगे ।”

४२ ‘खुदी क्या है ? राजे दारुने हयात,
खुदी क्या है ? वेदारिए नायनात ।’

४३ खुदूरे आखम से ।

४४ “फितरत अशुपत कि अज खाक-जहाँ-ए मजबूर
खुद गर खुद शिकने खुद निगरे पैदा अस्त ।”

४५ “सरोद ओ नेर ओ सियासत किताब ओ दीन ओ हुनर
अगर खुदी की हिफाजत करें तो आइन-ए-हमात
न कर सकें तो सरापा फमून-ओ-अफसाना ।
(खबे कलौम से) ।

४६ “या तो खुद अशकार हो या मुचे अशकार कर ।”

४७ पयामे मगरिक से ।

४८ “खुशतर ज हजार परसाई
गमे बतारीब अगानाई ।”

४९ “अगर कजरी है अजुम आसमा तेरा है या मेरा ?
मुझे फिके जहाँ क्या हो ? जहा तरा है या मेरा ?

५० ‘अपने लिए लाभकी, मेरे लिए चार मू ।’

५१ “हूर ओ परिस्ता हैं असीर मेरे सखम्युलात म ।

५२ बगिदरा से ।

५३ इकबाल का कहना है कि यदि बाध्यता ‘भाग्य की बजाय काल
द्वारा आय तो निर्धारण कम क्षोभकारक हो जाता है ।

५४ एम० रजौउद्दीन सिद्दीकी इकबालस क सधन ऑफ टाइम एण्ड
स्पेस ।

५५ अबू अली इब्न मस्कावाह, चिकित्सक, दार्शनिक और इतिहास
कार, ऐसे युग म हुए थे जो इस्लामी चिन्तन के विकास के लिए निर्णायक था ।
अल फराबी का प्रभाव उनार पर था, और इब्न सीना अभी तक नोजवान ही
था । मस्कावाह ने दार्शनिक परम्परा का जीवित रखा ।

५६ ‘तू ए मर्गे-चमन उदने से पहले परफिगा हो जा ।

५७ इसरारे खुदी स (पक्तियाँ १०१८ से १०३१ तक) ।

५८ जायदनामा म ।

५९ उसी नरम म व कहते हैं—‘तुम्हें शबनम मिले तो उसे समुन्दर

बना डाओ।”

६० इस घाग में लिखी हुई कुछ पवित्रता में इकबाल वास्तु दृष्टिमान के बहुत समीप आ जाते हैं।

६१ इसका अतिरिक्त “वय नी रो में” शिरागावाट के चेहरे के पीछे एक प्रकार की कोमलता है जो सतही परिचय में प्राम नियाई नहीं पड़ती। नीचे पर एक छोटी मरम में इकबाल बहल हैं—“उनका दिल यकीन करने वाला है यद्यपि उनका दिमाग इन्कार करता है।”

६२ फज्रुरहमान इकबाल एण्ड मिस्त्रिजिम (इकबाल रेज ए भिन्न पवित्रवाद में)।

६३ बहुत से स्थलों पर इकबाल सूफी मत को बिनापकर उसके नैतिक निहित निष्कर्षों की बड़ी तीव्र आलोचना करते हैं। उनका विचार है कि निष्कप निष्प्रियता और जड़ता का आरंभ होता है।

६४ इनकार खुदी स।

६५ जहरे आजम म।

६६ कू अली अ दर गुलारे नात्रा गुम

अस्त फमी परग ए महमिल गिरगन।

४१ तुलनीय, टैगोर— 'मेर ही जगन् मे तुम्हारे सर्वोच्च अधिकार पूर हयि ।'

४२ 'खुदी क्या है ? राजे दाम्ने हयात
खुदी क्या है ? बेदारिए कायनात ।'

४३ खुदूरे छाजम से ।

४४ "फितरत मंगुपत कि अज छाबे-जहाँ-ए मजबूर
खुद गरे खुद गिकने खुद निगरे पदा अस्त ।'

४५ 'सरोओ ओ दोर ओ सिमासत किताब ओ दीन ओ हुनर
अगर खुदी को हिफाजत करें तो आइन-ए-हयान
न कर सके तो सरापा फसून-ओ-अफमाना ।
(खुबे कलीम से) ।

४६ 'या ता खुद अकार हो, या मुने अकार कर ।'

४७ पयामे भारिक से ।

४८ 'खुगनर ज हजार परसाई
गमे बनारीक अगानाई ।'

४९ "अगर बजरी है अजुम आसमी तेरा है या मरा ?
मुझे फिके जहाँ क्यों हा ? जहाँ तरा है या मरा ?

५० "अपन लिए लाभकी मर लिए चार मू ।'

५१ 'हर आ फरिश्ता हैं अमीर मेरे तख्त्युलात म ।

५२ बागैदरा से ।

५३ इकबाल का कहना है कि यदि बाध्यता 'माय' की बजाय बाल
द्वारा आय ता निर्धारण कम लाभकारक हो जाता है ।

५४ एम० रजिउद्दीन सिद्दीकी इकबाल्स कमलान ऑफ टाइम एण्ड
स्पेस ।

५५ अबू अली इब्न मुस्कावाह चिकित्सक, दार्शनिक और इतिहास-
कार, एम युग में हुए थे जो इस्लामी चिन्तन व विकास के लिए निर्णायक थे ।
अल फरासी का प्रभाव उदार दर का, और इब्न सीना अमीर तक नीजवान ही
था । मुस्कावाह ने दार्शनिक परम्परा का जीवन रखा ।

५६ 'तू ए मर्गे-चमन उहने से पहल परफिगा हो जा ।

५७ इसरार खुदी से (पत्रिका १०१८ से १०१९ तक) ।

५८ जाबदनामा म ।

५९ उसी नाम म व कहन हैं— तुम्हें गबनम मिले तो उस समुन्दर

